इतिहास दिवाकर

त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष १ अंक ३ कार्तिक मास कलियुगाब्द ५११० अक्तूबर २००८

मार्गदर्शक :
मा. ठाकुर राम सिंह
डॉ० शिवाजी सिंह
चेतराम
इरविन खन्ना

सम्पादक :
डॉ० विद्या चन्द ठाकुर

सह सम्पादक
चेतराम गर्ग

सम्पादक मण्डल :
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ०ओम प्रकाश शर्मा
प्रो० सतीश चन्द्र
सुश्री चारु मित्तल

टंकण एवं सज्जा :
अश्वनी कालिया

सम्पादकीय कार्यालय :
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
नेरी, गांव—नेरी, डाकघर—खगल
जिला—हमीरपुर—१७७००१ (हि०प्र०)
फोन : ०१९७२—२०३०४४

मूल्य:
प्रति अंक —१५.०० रुपये
वार्षिक —६०.०० रुपये

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

काल तत्व
काल की अवधारणा
उसके प्रवाह सोपानों का परिज्ञान — ठाकुर रामसिंह — ३

इतिहास प्रवाह
सरस्वती सिन्धु सभ्यता की
मुद्रायें और महाभारत — डॉ० शिवाजी सिंह — ११

इतिहास के दर्पण में भारत
का पिछड़ना — किशोर तारे — १४

जगत विभूति
महाप्रलय द्रष्टा मार्कण्डेय ऋषि — दीपक शर्मा — १७

मातृ विभूति
कण्णगी के स्तीत्व की शक्ति — कृष्णानन्द सागर — २१

समर्थ दर्शन
जय—जय रघुवीर समर्थ — म०प्र० सहस्रबुद्धे — २५

विविधा
विष्णुकांत शास्त्री के काव्य
में राम — डॉ० परितोष बैलगो — ३३

देवी—देवताओं का महासमागम
कुल्लू का दशहरा — टेकचन्द ठाकुर — ३७

कला श्रेष्ठता का उत्तुंग —
मृकुला देवी मन्दिर — रमेश जसरोटिया — ४०

सम्पादकीय

लोक मंगल की शुभ दृष्टि

मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान् राम विश्व समाज के सर्वोच्च आदर्श और भारतीय लोक जीवन की प्राण शक्ति हैं। राम के बिना भारतीय लोक जीवन की कल्पना सम्भव नहीं है। यहां के जन–जन के रोम–रोम में राम बसे हैं। यहां के लोक–लोक में रामायण है। रामायण की जन–जन अटल अमिट व्यापकता में महर्षि बाल्मीकि जी का रामायण में कहा यह वचन चरितार्थ होता है –

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।

अर्थात् जब तक धरती पर नदियां और पहाड़ रहेंगे, तब तक संसार में रामायण कथा का प्रचार रहेगा।

बाल्मीकि रामायण आधारित रामायण की मौलिक धारा के साथ स्थानीय परिवेश एवं चिन्तन की परिधियों में विकसित लोक रामायण की अनेक अवान्तर कथाओं एवं कुछ भिन्न रूप में अनेक प्रसंगों का समावेश हुआ है। राम कथा के इस विविधतापूर्ण विस्तार पर ही तो गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है –

राम अनन्त, अनन्त गुण, अमित कथा विस्तार।

भगवान् राम के आदर्श चरित्र की जन–जन के हृदय तक पहुंच से रामायण के बहुविध सृजित रूपों को सहेजना, सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से निस्संदेह महत्त्वपूर्ण है परन्तु स्थानीय लोक प्रसंगों को संदर्भित कर के राष्ट्र की स्थापित सनातन मान्यताओं का अपकर्ष दर्शाने का प्रयास करना अत्यन्त अशोभनीय दुष्कर्म है।

दिल्ली विश्वविद्यालय के बी०ए० द्वितीय वर्ष, इतिहास ऑनर्स के पाठ्यक्रम में 'कल्चर इन एंशियंट इण्डिया' पुस्तक के 'थ्री हण्ड्रेड रामायनास' निबन्ध में जो सामग्री दी गई है, उसमें राम कथा के पारम्परिक सनातन संस्कार को विकृत करने की अलगाववादी मानसिकता दिखती है। इसी वृत्ति के कारण इस निबन्ध का विरोध हुआ है। राष्ट्र के भावी कर्णधार छात्रों को ऐसे संस्कार प्रदान करना, राष्ट्र के प्रतिष्ठित आधार को विस्थापित करने की निकृष्टता है। ऐसी दुर्लक्षित वृत्तियों को सुसंगठित प्रबल विरोध के साथ रोका जाना आवश्यक है, तभी इतिहास की 'लोक मंगल की शुभ दृष्टि' संरक्षित रह पाएगी।

डॉ0 विद्या चन्द ठाकुर

काल की अवधारणा और उसके प्रवाह सोपानों का परिज्ञान

• ठा० राम सिंह

काल की अवधारणा

पाश्चात्य जगत में पहले कभी भी काल तत्व की धारणा स्पष्ट नहीं थी और वर्तमान में भी गत १००—१५० वर्षों के वैज्ञानिक अनुसंधानों के बाद भी स्थिति वैसी ही है। चौदहवीं शताब्दी तक यूरोप को गिनती करनी नहीं आती थी। जब भारतीय गणित ने यूरोप की यात्रा की तो हिन्दुओं ने उनको गिनती करनी सिखाई। सताहरवीं शताब्दी तक भूतकाल क्या है ? वर्तमान क्या है और भविष्य क्या है ? इसकी कल्पना भी पाश्चात्यों को नहीं थी। जब १८वीं शति में भारतीय विद्याओं ने यूरोप के विश्वविद्यालयों में प्रवेश किया तब उनको भूत, वर्तमान और भविष्य के ज्ञान का पता लगा।

काल के तत्व दर्शन की धारणा स्पष्ट न होने के कारण पश्चिम के इतिहासकार बाईबिल की उस धारणा कि इस पृथ्वी की उत्पत्ति ईसा के पूर्व ४००४ वर्ष में हुई के साथ चिपके हुये हैं। इतना ही नहीं वहां के वैज्ञानिक भी १९वीं शती के प्रारंभ और अंत तक बाईबिल के उसी विचार के मानने वाले थे; परन्तु जब वहां के वैज्ञानिक अनुसंधानों ने यह सिद्ध कर दिया कि इस पृथ्वी की उत्पत्ति ४ अरब ५० करोड़ वर्ष पूर्व हुई थी तो पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने बाईबिल की उपरोक्त धारणा का परित्याग कर दिया; परन्तु यूरोप के इतिहासकार अभी भी १९वीं शती की उसी गली सड़ी मानसिकता से ग्रस्त हैं।

भारतीय क्रान्तद्रष्टा ऋषियों ने काल को अपने सूक्ष्म अध्ययन का विषय बनाया। उन्होंने काल का अर्थ, परिभाषा, स्वरूप, सर्वव्यापकता, महिमा, अगम्य और अथाह अनन्तता आदि सर्वपक्षों की गहराई से खोज कर उसका इतिहास भी लिख डाला।

काल के तत्वदर्शन की उपरोक्त अवधारणा के सम्बन्ध में लेखक का एक लेख ***(काल—ज्ञान) "इतिहास दिवाकर"*** के गत अंक में प्रकाशित हुआ और अभी के लेख का विषय ***"काल तत्त्व और उसके प्रवाह के सोपानों का परिज्ञान"*** है।

वैदिक कालज्ञ ऋषियों ने सर्वप्रथम काल की १० सूक्ष्म इकाईयों का आविष्कार किया। तत्पश्चात उन्होंने काल का परिगणन काल की सूक्ष्मातिसूक्ष्म इकाई परमाणु से आरंभ कर उत्तरोत्तर बड़ी से बड़ी इकाईयों का निर्माण करते करते सारे ब्रह्माण्ड को संपूर्णत: व्याप्त करने वाली महानतम इकाई ***'महाकाल'*** का निर्माण कर डाला। परंतु ऋषि प्रज्ञा वहां तक ही नहीं रूकी, अपितु पुराणकारों ने भूतकाल के इन सोपानों को ब्रह्मा

के पुत्र लोमश जिसकी आयु का एक दिन ब्रह्मा की सारी आयु (१००वर्ष) के बराबर होता है उनका प्रतीकात्मक उदाहरण प्रस्तुत कर काल की अथाह एवं अगम्य अनन्तता के साथ जोड़ दिया। इसे भारतीय प्रतिभा का अद्‌भुत चमत्कार ही कहा जा सकता है।

कालगणना

मूर्त काल के विभिन्न अवयवों की जानकारी विज्ञान के जिस शास्त्र से प्राप्त होती है उसका नाम है काल गणना। वर्तमान में विश्व में ७० से अधिक कालगणनायें प्रचलित हैं। इन सब में प्राचीनतम ही नहीं अपितु काल के तत्व पर आधारित वैज्ञानिक एवं वैश्विक एकमात्र युगों की भारतीय कालगणना ही है। अन्य सभी कालगणनायें काल के तत्व पर आधारित नहीं है,अपितु देश विशेष, वर्ग या सम्प्रदाय विशेष, महापुरूष विशेष एवं घटना विशेष से संबन्धित हैं।

भारतीय कालगणना के निर्माताओं कालज्ञ वैदिक ऋषियों ने काल का परिगणन काल की सूक्ष्म इकाईयों के आविष्कार से किया। ये सूक्ष्म इकाईयां निम्नलिखित हैं :—

२ परमाणु	=	१ अणु
३ अणु	=	१ त्रस्रेणु
३ त्रस्रेणु	=	१ त्रुटि
१०० त्रुटि	=	१ वेध
३ वेध	=	१ लव
३ लव	=	१ निमेष
३ निमेष	=	१ क्षण
५ क्षण	=	१ काष्ठा
१५ काष्ठा	=	१ लघु
१५ लघु	=	१ नाडिका
६ नाडिका	=	१ प्रहर
८ प्रहर	=	१ दिन—रात

भारतीय वैज्ञानिक भास्कराचार्य काल की उपरोक्त चौथी ईकाई 'त्रुटि' को काल की सूक्ष्म ईकाई मानते हैं। इसका परिमाप — त्रुटि एक सैकंड का ३३७५०वां भाग है। कमल के पत्ते को यदि सूई की नोक से छेदा जाये तो छेदन में जितना समय लगता है वह त्रुटि का परिमाप है।

उपरोक्त सूक्ष्तम इकाईयों का आविष्कार विज्ञान के तीव्रतम गति वाले पदार्थों के परिमाप के लिये किया है।

काल की सूक्ष्मतम इकाईयों के अतिरिक्त भारतीय कालगणना में उत्तरोत्तर बड़ी

से बड़ी इकाईयों का समावेश हुआ है।

काल के विभिन्न खंडों का निर्माण

काल के विभिन्न खंडों का निर्माण आकाशीय ग्रहों की विभिन्न गतियों के कारण होता है। वैदिक ऋषियों ने वर्तमान सृष्टि को पंचमण्डल क्रम वाली खोजा। ये मण्डल हैं – चन्द्र मण्डल, पृथ्वी मण्डल, सूर्य मण्डल, परमेष्ठी मण्डल एवं स्वायम्भुव मण्डल। ये मण्डल क्रम से एक दूसरे के गिर्द मण्डल आकार में घूमते हैं। उदाहरणार्थ चन्द्र मण्डल पृथ्वी मण्डल के गिर्द, पृथ्वी मण्डल सूर्यमण्डल, सूर्य मण्डल परमेष्ठी मण्डल और परमेष्ठी मण्डल स्वायम्भुव मण्डल के गिर्द घूमते हैं। इनका एक दूसरे के गिर्द परिभ्रमण ही काल के खंडों का निर्माण करता है।

काल खंडों की उत्पत्ति

दिनमान –

दिन चार प्रकार के होते हैं – (१) सावन दिन, (२) सौर दिन, (३) चान्द्र दिन एवं (४) नाक्षत्र दिन।

दिनों की उत्पत्ति – पृथ्वी अपनी धुरी पर १६०० कि.मी. प्रति घंटे की गति से घूमती है। इसके लिये उसे एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक लगभग २४ घंटे लगते हैं। इसमें पृथ्वी का पूर्वार्द्ध सूर्य के सामने और पश्चिमार्द्ध सूर्य के पीछे रहता है। जो भाग सूर्य के सम्मुख होता है उसे दिन और जो भाग सूर्य के पीछे होता है उसे रात्रि कहा जाता है। इस प्रकार अहोरात्र का निर्माण होता है। यह सावन दिन कहलाता है।

(२) सौर दिन – पृथ्वी की दूसरी गति सूर्य की परिक्रमा की है। इसमें पृथ्वी एक लाख कि.मी. प्रति घंटे की गति से सूर्य के चारों ओर घूमती है। ऐसा करने में उसे वर्तमान में लगभग ३६५.२५ अहोरात्र या सावन दिन लगते हैं। यदि पृथ्वी की कक्षा को ३६० घण्टों में विभक्त किया जाये तो पृथ्वी का अपनी कक्षा पर एक अंश का चलन एक सौर दिन कहलायेगा। सौर दिन सावन दिन से लगभग २१ मिनट बड़ा होता है।

(३) चान्द्र दिन – चान्द्र दिन को तिथि कहते हैं। चन्द्रमा को पृथ्वी के गिर्द घूमते हुये १२अंश तक चलन एक तिथि या चान्द्र दिन कहलाता है। अमावस्या के दिन चन्द्रमा, पृथ्वी और सूर्य के मध्य सूर्य से ठीक नीचे होता है। यह स्थिति ०अंश कहलाती है। उस समय चन्द्रमा सूर्य से निकट होता है। उसके बाद चन्द्रमा का १२ अंश तक सूर्य से दूर चलन चन्द्रमा की एक तिथि या दिन कहलाता है। इसी प्रकार चन्द्रमा का सूर्य से १८० अंश दूर जाना पूर्णिमा कहलाती है। अमावस्या के बाद पूर्णिमा तक के समय शुक्ल पक्ष की तिथियां होती है। पूर्णिमा के बाद चन्द्रमा प्रति १२ अंश के हिसाब से सूर्य के निकट आना शुरू होता है। इसे कृष्ण पक्ष की तिथियां कहते हैं। इस प्रकार १५ तिथि का कृष्ण पक्ष और १५ तिथि का शुक्ल पक्ष होता है। इन दोनो पक्षों की तिथियों को जोड़ कर ३०

तिथियों का एक चन्द्र मास होता है।

(४) नाक्षत्र दिन — पृथ्वी अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है। अत: हमें ग्रह नक्षत्र पश्चिम की ओर जाते लगते हैं। पृथ्वी का कोई भी निश्चित स्थान जब किसी नक्षत्र के सामने से घूमता हुआ अगले दिन उसी नक्षत्र के सामने आ जाता है तो नक्षत्रों का एक चक्र पूरा हो जाता है। इसको एक नाक्षत्र—दिन कहते हैं। इस प्रकार ३० नाक्षत्र दिनों का एक नाक्षत्र मास कहलाता है।

दिन अथवा बार का आरंभ

सूर्य सिद्धांत के अनुसार सृष्टि का आरम्भ अर्द्धरात्रि से हुआ। इस लिये दिन का आरंभ भी अर्द्ध रात्रि से माना जाता है। वर्तमान में सारे संसार में अर्धरात्रि से ही दिन का आरम्भ मानते हैं। परंतु विष्णुधर्मोत्तर पुराण, आर्यभट्ट प्रथम, ब्रह्मगुप्त तथा भास्कराचार्य सृष्टि का आरंभ सूर्योदय से मानते हैं। अत: उनके मत के अनुसार सूर्योदय से ही दिन का आरंभ माना जाता है। ये दोनों ही मान्यतायें प्रचलित हैं।

सप्ताह मान

सात सावन दिनों का एक सप्ताह होता है। सप्ताह के दिनों को वार कहते हैं।

सप्ताह के दिनों का नामकरण — आकाशीय तारों, ग्रहों और उपग्रहों में केवल सात ग्रह हमारी पृथ्वी के वायुमण्डल को प्रभावित करते हैं। ये ग्रह हैं, सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र और शनि। सृष्टि का आरंभ सूर्योदय से होता है। इस लिये सप्ताह के पहले दिन का नाम सूर्य के नाम पर रवि रखा गया। वास्तव में दिन के २४ घण्टों में से प्रत्येक घण्टा प्रत्येक ग्रह का माना गया है। इस प्रकार २४ घण्टे बीतने पर पुन: दूसरे दिन का पहला घण्टा चन्द्र से आरम्भ हुआ। अत: दूसरे दिन का नाम सोमवार रखा गया। उपरोक्त क्रम से २४ घंटे पूरे होने पर अगले दिन का पहला घण्टा किस ग्रह से आरंभ हुआ उस ग्रह के आधार पर उस संबन्धित दिन का नाम रखा गया। अत: इस प्रकार सप्ताह के दिनों के नाम सर्वप्रथम भारत में गवेषित हुये और इसी सिद्धांत के अनुसार ये सारे विश्व में प्रचलित हैं।

मासमान

पृथ्वी के ३६० अंश वाले कक्षा चक्र को १२ भागों में विभक्त किया गया है। इसका अर्थ है कि वर्ष १२ अरों वाला एक चक्र है। १२ अरे १२ मासों के प्रतीक हैं। यह १२ अरों वाला काल चक्र सूर्य का चक्र लगाता है।

अत: इस तरह ३० अंश का एक महीना हुआ। यह महीना ३० सौर दिनों का बनता है। मासों के निर्माण का कारण पृथ्वी नहीं अपितु चन्द्रमा का पृथ्वी के चारों ओर का

परिक्रमण हैं यह ऋग्वेद के अनुसार चन्द्रमा ही मास और अर्धमासों का निर्माता है। चन्द्रमा आकाश में नक्षत्रों को मापता चलता है। इस कारण चन्द्रमा के साथ मापने का भाव जुड़ा है।

मासों का नामकरण

चन्द्रमा का पृथ्वी के चारों ओर का भ्रमण ही पक्षों और महीनों का जनक है। पूर्णिमा से ही मास का अंत होता है। इसी कारण इसे पूर्णिमा कहते हैं। इसलिये मासों का नामकरण भी उसी राशि के नक्षत्र के आधार पर किया जाता है जिस राशि में चन्द्रमा पूर्णिमा के अंत में होता है। यथा: चन्द्रमा जब पूर्णिमा के अंत में चित्रा नक्षत्र के योग में होता है तो उस मास का नाम चैत्रमास रखा गया है। पूर्णिमा के समय चन्द्रमा जिस नक्षत्र में होता है सूर्य उसके १८० अंश विपरीत नक्षत्र राशि में होता है। अत: जब सूर्य की संक्रान्ति में अश्विनी नक्षत्र होता है तो चन्द्रमा चित्रा नक्षत्र में होता है। इस कारण मेष की संक्रान्ति वाले महीने का नाम चैत्र कहलाता है।

वर्षमान

पृथ्वी एक लाख कि.मी. प्रति घंटा की गति से सूर्य के गिर्द ९६,६०,००००० कि.मी. लम्बे परिक्रमा पथ पर एक चक्र ३६५.१/४ में पूरा करती है। इस काल अवधि को १ वर्ष की संज्ञा दी गयी है। पृथ्वी की उत्पत्ति से लेकर यह परिभ्रमण का काल लगातार बढ़ रहा है और इसी कारण पृथ्वी का उपरोक्त भ्रमण काल निश्चित नहीं हैं क्योंकि पृथ्वी की सूर्य से दूरी बढ़ती जा रही है। पृथ्वी १०००० वर्ष में सूर्य से १.५ सें०मी. दूर हो जाती है। इस प्रकार १.६ करोड़ वर्ष में पृथ्वी के परिक्रमण का १ घंटा बढ़ जाता है। १९७ करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी सूर्य के गिर्द घूमने में ३६० दिन लगाती थी। यही कारण है कि उस समय वैदिक ऋषियों ने एक वृत्त को ३६० अंशों में विभाजित किया। अत: कल्प के आरंभ में ३६० दिनों के महत्व को बनाये रखने के लिये अब भी ३६० दिनों का वर्ष माना जाता है।

वर्ष और वर्ष के पहले दिन का प्रारंभ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से होता है।

युगमान

पंच वर्षीय युग — वर्ष से अधिक अवधि वाली इकाई के लिये चन्द्रमा और सूर्य के एक ही नक्षत्र में होने को आधार बनाया। सूर्य और चन्द्रमा की पांच वर्ष के बाद उसी नक्षत्र में युति होती है। अत: इस प्रकार युगमान का आरंभ पंच वर्षीय युग से हुआ। घनिष्ठा नक्षत्र में चन्द्रमा और सूर्य के मिलने से पंच वर्षीय युग का आरंभ होता है।

१२ वर्षीय युग — युगमान की सीमा को ५ वर्ष से अधिक अविध का बनाने के लिये बृहस्पति को साथ जोड़ा गया है। बृहस्पति को एक अंश के चलन में एक वर्ष का समय लगता है और बृहस्पति एक भगण चक्र को १२ वर्ष में पूरा करता है। इस लिये बृहस्पति

के भगण चक्र के १२ वर्ष के काल को युगमान लिया गया। इस प्रकार १२ वर्षीय युग का निर्माण हुआ।

६० वर्षीय युग— युग की अवधि और अधिक बढ़ाने के लिये पांच वर्षीय युग का परिगणन बृहस्पति के संदर्भ में किया गया। बृहस्पति का एक भगण चक्र १२ वर्षों में पूरा होता था और ५ भगण चक्रों का एक युग माना जाता था। भगण चक्रों का काल १२ × ५ = ६० होता है। इस प्रकार युग के मान का क्रमिक विकास तीन चरणों में हुआ। पहले चरण में ५ वर्ष का युग, दूसरे चरण में १२ वर्ष का युग और तीसरे चरण में ६० वर्षों का युग निर्मित हुआ। अश्विनी से आरंभ होने वाले ६० वर्षीय युग का आरंभ काल के आदि से है। परंतु घनिष्ठा से शुरू होने वाले ६० वर्षीय युग का आरंभ ६५ करोड़ ५९ लाख वर्ष के बाद हुआ। जब घनिष्ठा नक्षत्र में सूर्य, चन्द्र की युति के साथ साथ बृहस्पति की युति हुई थी। ऐसी घटना प्रति ६५ करोड़ ५० लाख वर्ष के बाद होती है। ऐसा समय कल्प में ५ बार आता है।

चतुर्युगमान

कल्प के प्रारंभ में पृथ्वी को प्रभावित करने वाले सातों ग्रह— चन्द्रमा, सूर्य, मंगल, बुद्ध, शनि एवं बृहस्पति अपने शर और योग के साथ एक नक्षत्र में थे। उन्होंने जब घूमना शुरू किया तो उनकी प्रथम युति (४३२,००० वर्ष) को कलियुग, दूसरी युति (८ लाख ६४ हजार वर्ष) द्वापर, तीसरी युति (१२,९६,००० वर्ष) त्रेता और चौथी युति (१७,२८,००० वर्ष) को सत्ययुग की संज्ञा दी गयी।

महायुग

उपरोक्त चारों युगों को जोड़ कर महायुग की बड़ी अवधि वाली ईकाई बन जाती है।

मन्वन्तर मान

महायुग से भी लम्बी अवधि की ईकाई के लिये भारतीय कालज्ञानियों ने मन्वन्तर मान का अनुसंधान किया। इस बड़ी अवधि वाले कालमान का आधार सृष्टिक्रम के परिवर्तन और पृथ्वी की ध्रुवता के परिवर्तन में लगने वाले समय को बनाया। सृष्टिक्रम का बदल ३०,८४,४८,००० वर्ष के बाद होता है। इस कालखंड को मनु कहा गया। एक मन्वन्तर में ७१ महायुग + एक सत्ययुग के काल के बराबर है। अर्थात् ४३,२०,००० × ७१ + १७,२८,००० = ३०,८४,४८,००० इसमें सत्ययुग के १७,२८,००० वर्ष अधिक हैं। वास्तव में सत्ययुग का यह समय मन्वन्तर की मनु संधि कहा जाता है। मन्वन्तर में सत्ययुग का यह समय सृष्टि क्रम को बदलने का कार्य करता है। सूर्य सिद्धांत के अनुसार यह काल मन्वन्तर का जलप्लावन काल है।

सूर्यमण्डल का परमेष्ठी मण्डल के गिर्द का परिभ्रमण काल ३०,६७,२०,००० वर्ष पूरा होता है। यह एक मनु काल है।

कल्पमान

काल की मन्वन्तर से भी अधिक लम्बी ईकाई के लिये परमेष्ठी मण्डल के स्वायम्भुव मण्डल के गिर्द परिभ्रमण को आधार बनाया। यह परिभ्रमण ४,३२,००,००,००० वर्ष में पूरा होता है। इस कालखंड को कल्प की संज्ञा दी गयी। भौगोलिक दृष्टि से एक कल्प १४ मन्वन्तर और १५ मनु सन्धि कालों के जोड़ से बनता है। यहां पर यह भौगोलिक तथ्य खगोलीय तथ्य के समान है। यथा ३०,६७,२०,००० × १४ + १७२८,००० × १५ = ४,३२,००,००,००० वर्ष।

महाकल्प

अब इस अद्‌भुत विश्व के अभिकल्पक श्री ब्रह्मा जी काल गणना के अंतिम चरण में आ जाते हैं। एक कल्प ब्रह्मा की आयु का एक दिन होता है और रात्रि भी उतनी ही होती है। अर्थात् —

ब्रह्मा दिन = एक कल्प	= ४,३२,००,००,००० वर्ष
ब्रह्मा रात्रि = एक कल्प	= ४,३२,००,००,००० वर्ष
ब्रह्मा का संपूर्ण दिन	= ८,६४,००,००,००० वर्ष
ब्रह्मा का एक मास	= ८,६४,००,००,००० × ३०
	= २,५९,२०,००,००,००० वर्ष
ब्रह्मा का एक वर्ष	= २,५९,२०,००,००,००० × १२
	= ३१,१०,४०,००,००,००० वर्ष
ब्रह्मा की सम्पूर्ण आयु	= ३१,१०,४०,००,००,००० × १००
	= ३१,१०,४०,००,००,००,००० वर्ष

अत: इस प्रकार ब्रह्मा की संपूर्ण आयु (ब्रह्माण्ड की आयु) काल की महानतम और अंतिम इकाई महाकल्प का का काल मान है।

महाकल्प का हिसाब दूसरी प्रकार :

ब्रह्मा का एक दिन	=	१ कल्प
ब्रह्मा की एक रात्रि	=	१ कल्प
ब्रह्मा का पूरा दिन	=	२ कल्प
ब्रह्मा का एक मास	=	६० कल्प
ब्रह्मा का एक वर्ष	=	७२० कल्प

ब्रह्मा की संपूर्ण आयु	=	७२,००० कल्प
	=	४,३२,००,००,००० × ७२,०००
	=	३१,१०,४०,००,००,००,००० वर्ष

महाकल्प का महाप्रलय

श्रीमद्भगवद् गीता के अष्टम अध्याय के श्लोक १७ से २४ तक सृष्टि चक्र को समझाते हुये भगवान कृष्ण कहते हैं :—

"हे अर्जुन! ब्रह्मा का जो एक दिन है, उसको १००० चौकड़ी युग तक अवधि वाला और रात्रि को भी १००० चौकड़ी युग तक अवधि वाला जो पुरूष तत्व से जानते हैं वे योगी काल के तत्व को जानने वाले हैं।

सम्पूर्ण दृश्टयमात्र भूतगण— ब्रह्मा के दिन के प्रवेश काल में अवयुक्त से अर्थात् ब्रह्मा के सूक्ष्म शरीर से उत्पन्न होते हैं और ब्रह्मा के रात्रि के प्रवेश काल में उस अव्यक्त नामक ब्रह्मा में लय हो जाते हैं। और वह ही यह भूत समुदाय उत्पन्न होकर प्रकृति के वश में हुआ रात्रि के प्रवेश काल में लय होता है और दिन के प्रवेश काल में फिर उत्पन्न होता है। हे अर्जुन! इस प्रकार ब्रह्मा के १०० वर्ष पूर्ण होने पर ब्रह्मा भी अपने लोक सहित शान्त हो जाते हैं।" यही महाकल्प का प्रलय है। कालक्रम में सर्वशक्तिमान ईश्वर की प्रेरणा से विश्व के महाभिकल्पक अपनी शान्ति को समाप्त कर फिर जाग कर सक्रिय होते हैं। फिर ब्रह्माण्ड की रचना होती है और उसके किसी ग्रह पर पुन: मानव सृष्टि होती है। इसी प्रकार यह सृष्टि चक्र आदि काल से सतत रूप से चलता आया है।

सन्दर्भ

१. विश्व की काल यात्रा

२. भारतीय काल गणना की रूपरेखा

३. भारतीय कालगणना का वैज्ञानिक एवं वैश्विक स्वरूप

४. श्रीमद्भगवद् गीता

सरस्वती सिन्धु सभ्यता की मुद्रायें और महाभारत

• डा० शिवाजी सिंह

सरस्वती सिन्धु सभ्यता की मुद्राओं पर अंकित कतिपय प्रसिद्ध आकृतियों का विवेचन झा और राजा राम ने अपनी पुस्तक 'डिसाइफर्ड इण्डस स्क्रिप्ट' (२०००) में महाभारत के आधार पर किया है। सरस्वती–सिन्धु लिपि के उनके उद्वाचन (डिसाइफरमेंट) से कोई सहमत हो न हो, मुद्राओं पर अंकित इन आकृतियों के जो सन्दर्भ उन्होंने महाभारत से प्रस्तुत किये हैं वे द्रष्टव्य हैं। इससे विदित होता है कि ऋग्वेद से महाभारत तक जो भारतीय सांस्कृतिक परम्परा अविछिन्न चली आ रही है, सरस्वती–सिन्धु संस्कृति उसी परम्परा का अंग है।

जिन तीन मुद्रा–आकृतियों को झा एवं राजाराम ने प्रस्तुत किया है उनमें पहली वह वृषभ आकृति है जिसे सामान्यत: 'भव्य वृषभ' ('द मैग्नीफिसैंट बुल') के नाम से जाना जाता है। यह आकृति कई मुद्राओं पर अंकित है। झा एवं राजाराम (२००० : ७३)

(दिव्य वृषभ, विभिन्न अभिलेखों के साथ, मोहेंजो–दड़ो)

ने इसके प्रसंग में महाभारत का निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है :

'वृषो हि भगवान धर्मः ख्यातो लोकेषु भारत।
नैघंटुक पदाख्याने विद्धि मां वृषमुत्तमम्।।'

(महाभारत शान्ति पर्व ३३०.२३)

अर्थात् 'हे भारत! भगवान धर्म ही लोक में वृष नाम से प्रसिद्ध है। नैघंटुक पदाख्यान में (ऐसा बताया गया है)। (अत:) मुझे उत्तम वृष (भव्य वृषभ) के रूप में जानो।'

इस सन्दर्भ में झा एवं राजाराम का निष्कर्ष सही है कि ऋग्वैदिक युग में 'उत्तम वृष' इन्द्र का विरुद था किन्तु कालान्तर में जब विष्णु ने इन्द्र के स्थान पर सर्वोच्च देव का स्थान ग्रहण कर लिया तो इस विरुद को कृष्ण–विष्णु से सम्बन्धित मान लिया गया। महाभारत में इसी परिवर्तित स्थिति का वर्णन है।

सरस्वती सिन्धु मुद्राओं पर बहुदा अंकित 'एकशृंग'

सामने दी गई आकृति को इन विद्वानों ने विवेचनार्थ चुना है वह सुविदित एकशृंग (यूनीकार्न) की आकृति है जो सरस्वती–सिन्धु सभ्यता की मुद्राओं पर सर्वाधिक बार अंकित प्राप्त हुई है। इस प्रसंग में उन्होंने महाभारत के निम्नांकित श्लोक की ओर हमारा ध्यान खींचा है:

'एकशृंग पुरा भूत्वा: वराहो दिव्यदर्शन:।
इमां छोद्धृतवान् भूमिं एकशृंगस्ततो ह्यहम्।।'

(महाभारत शान्ति पर्व ३३०.२७)

अर्थात् 'प्राचीन काल में इस भूमि को जलप्रलय से बाहर निकालने के लिये मैं दिव्य दर्शन एकशृंग वराह के रूप में आविर्भूत हुआ था। अत: मैं ही एकशृंग हूँ।'

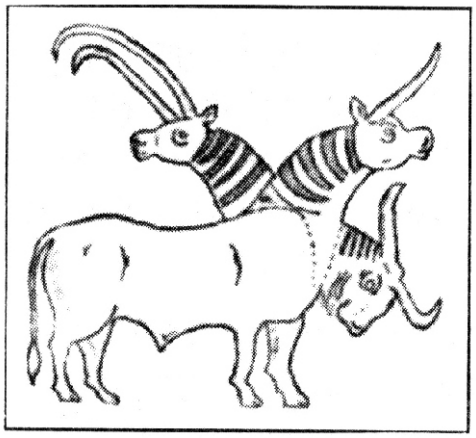

मोहेंजो–दड़ो की एक मुद्रा पर त्रिमुखी एकोदर बहुग्रीव

झा एवं राजाराम (२०००:७४–७५) का मत है कि सरस्वती–सिन्धु सभ्यता की मुद्राओं पर अंकित एकशृंग वही देव है जिसने कभी जलप्रलय से विश्व को बचाया था। यह दूसरी बात है कि महाभारत काल से यह श्रेय कृष्ण–विष्णु को दिया जाने लगा।

झा एवं राजाराम द्वारा विवेचित तीसरी आकृति उस काल्पनिक पशु की है जिसके तीन शिर हैं जिनसे वह आगे, पीछे और नीचे देख रहा है। भव्य वृषभ और एकशृंग भाँति यह काल्पनिक पशु भी विद्वानों के बीच बहुविवादित रहा है। इसके प्रसंग में झा एवं राजाराम महाभारत के पूर्वोद्धृत श्लोक के तुरन्त बाद का श्लोक उद्धृत करते हैं जो निम्नवत् है :

'तथैवासं त्रिककुदो वाराहं रूपमास्थितः।
त्रिककुत् तेन विख्यातः शरीरस्य तु मापनात्।।'

(महाभारत शान्ति पर्व ३३०.२८)

अर्थात् 'उसी प्रकार वराह रूप में स्थित होने पर मेरे शरीर के तीन ककुत् थे। शरीर के इस रूप के कारण में त्रिककुत् नाम से विख्यात् हूँ।'

झा एवं राजाराम का यह कथन सही है कि महाभारत में प्राप्त ये विवरण हमारे लिये इस कारण महत्त्वपूर्ण नहीं हैं कि वे 'उत्तम वृष', 'एकशृंग' और 'त्रिककुत' को कृष्ण–विष्णु से सम्बन्धित करते हैं अपितु इसलिये मूल्यवान् हैं कि वे वैदिक सांकेतिकता (सिम्बॉलिज्म) का उद्घाटन करते हैं। इस सांकेतिकता के आलोक में न केवल सरस्वती–सिन्धु मुद्राओं पर अंकित आकृतियों को समझा जा सकता है अपितु समूचे सरस्वती–सिन्धु सभ्यता के ऐतिहासिक प्रसंग (हिस्टारिकल कांटेक्स्ट) को भी परिभाषित किया जा सकता है।

शिवाला नगर, मेहनीपुर,
गोरखपुर (उ०प्र०)

इतिहास के दर्पण में भारत का पिछड़ना

• किशोर तारे

कुछ प्रश्न मनोवैज्ञानिक होते हैं पर कुछ प्रश्न सत्य घटनाओं पर आधारित होते हैं। ये सारी, भारतभर की सत्य घटनाएं आपको कैसे मालूम होती हैं? स्पष्ट है, पुस्तकें पढ़कर। ज्ञान किताबों से ही मिलता है? एक प्रोफेसर को यदि बात करते रोका जाये कि "इसमें आपका ज्ञान कहाँ है? जो पढ़ा, बोले जा रहे हैं—आप नकलची हैं।" तो १,२,३,४ और हर शब्द भी, हर व्यक्ति ने पढ़ा है, यानि सारे ही नकलची हैं? बस सत्य का ठीक समय पर आदान—प्रदान ही ज्ञान है। सदा से यही हो रहा है।

विलियम एडम और लार्ड मैकाले, दो ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने "भारत में शिक्षा" विषय पर शोध किया। एक ने पूरा भारत भ्रमण १८१० में किया। दूसरे ने १८३६ में, सिर्फ मद्रास प्रांत के हर गांव शहर में, १६०० अनुयायी भेजकर पता किया। दोनों रिपोर्टें इंग्लैंड की संसद के सामने रखी गई। एडम रिपोर्ट में था—

१) भारत के, करीब करीब, प्रत्येक गांव में स्कूल हैं व एक वैद्यराज है।

२) उच्च शिक्षा देने वाली प्रसिद्ध संस्थाएँ हैं जहाँ भारतीय बच्चों के साथ अन्य देशों के बच्चे भी पढ़ते हैं। ऐसी हजारों संस्थायें हैं।

३) मद्रास, मुम्बई, कलकत्ता, बिहार, यूपी, पंजाब में सभी जाति के बच्चे पढ़ते हैं तथा जैसा जनसाधारण सोचता था कि सिर्फ ब्राह्मण बच्चे पढ़ते हैं वैसा नहीं है। सिर्फ २६ प्रतिशत बच्चे ब्राह्मण हैं, अन्य दूसरी जाति के हैं तथा कुछ तो शूद्र और आदिवासी भी हैं।

रिपोर्ट १०१७ पेज की थी पर ***'भारत स्वयंपूर्ण है'*** यह किसी को अच्छा नहीं लगा। "जल्दी से जल्दी एक पीढ़ी अंग्रेजी समझने—बोलने वाली तैयार करनी ही है," ऐसा मन हुआ। लार्ड मैकाले की रिपोर्ट में भी—

१) पूरे मद्रास में शिक्षण उपलब्ध है हर गांव में। हर विषय भी आप पढ़ सकते हैं व उच्च शिक्षा ले सकते हैं। सिर्फ वैद्यक शास्त्र पढ़ने पढ़ाने वाली २५०० संस्थाएं हैं व यहाँ भी आश्चर्य है कि बार्बर (नाई) जाति के बच्चे अधिक हैं।

२) २२०० संस्थाओं में, इंजिनियरिंग सिखाते हैं और यहाँ भी, यह टैक्निकल ज्ञान लेने वाले, ७५ प्रतिशत पेरियार जाति के हैं जो मंदिर निर्माण करते हैं। दक्षिण के सारे ही मंदिर, पेरियार लोगों ने बांधे हैं जैसे नागपुर से जगन्नाथ पुरी तक सारे मंदिर, छत्तीसगढ़ के शर्बर जाति ने बांधे हैं। पेरियार या शर्बर जाति है। सो शबरी याने शर्बर जाति की कोई भी स्त्री। प्रभुराम के लिये, जंगल के सारे बेर के पेड़ों से, एक एक बेर तोड़कर, चखकर, सिर्फ मीठे बेर श्री राम को खिलाने वाली शबरी। उसका नाम कुछ अलग ही होगा। जानते हैं कि एक ब्राह्मण सेनापति ने छतीसगढ़ को १७४२ में जीता व करीब १८५४ तक लगभग ११० वर्ष

यहाँ मराठों का शासन था। सामने में छतीसगढ़ी उन्हें 'हो महाराज' कहते थे पर स्थानीय भाषा में वे मरहट्टे कहलाते थे। मराठी ब्राह्मणों को भटिया कहते थे। शबरी, भटिया, पेरियार सारे जाति सूचक नाम थे। खैर! अंग्रेजों को अब ज्यादा देर करना ठीक न लगा। सारे देश में उनका डर था सो पहला हुकुम निकला कि मंदिर के किसी भी निर्माण में किसी पेरियार को नहीं लेना, दूसरा हुकुम था कि गांवों में चलने वाले सारे गुरुकुल, शिक्षा संस्थाएं बंद की जाती हैं क्योंकि इनमें अंग्रेजी पढ़ाने का प्रावधान नहीं है। मात्र तीन महीने का नोटिस दिया गया। उसके बदले अंग्रेजी पढ़ाने वाले स्कूल खोले गए व प्रचार किया गया कि "जो अंग्रेजी पढ़ लेगा, उसे तुरंत नौकरी मिलेगी व उसके कुटुंब पर सरकार की मेहरबानी होगी।" बदलती परिस्थिति समझने वालों ने अपने बच्चों को अंग्रेजी स्कूलों में भरती किया। "हे माँ सरस्वती" के बदले बच्चे, "गॉड सेव द क्वीन" और "जैक एंडजिल" सीखने लगे। अंग्रेजों के लिये गुलामों की फौज तैयार होने लगी। पहली बैच के सारे ही शिक्षक बनाकर नये स्कूलों में भेजे गये। स्वामी विवेकानंद, लोकमान्य तिलक, डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी, पंडित नेहरू, गोलवलकर गुरुजी, महात्मा गांधी, वीर सावरकर, विनोबा भावे, सरोजनी नायडू आदि स्वतंत्रता संग्राम के सारे अग्रणी अंग्रेजी पढ़ने गये थे।

अंग्रेजी में १८५० के करीब कहते हैं ११ हजार शब्द थे जब गुजराती में ४० हजार, मराठी में ४५ हजार व हिन्दी में ६० हजार शब्द थे। कौन सी भाषा समृद्ध थी? यूरोप व इंग्लैंड में प्रत्येक एकड़ में निकलने वाली उपज से अधिक उपज भारत में होती थी। लोहे के पत्थर से लोहा निकलना, म०प्र०, ओड़िसा व बिहार में, इंग्लैंड से कहीं अधिक होता था। दिल्ली के लौह स्तंभ जैसा जंग रहित लोहा, भारत में बनता था जबकि अंग्रेजों के लोहे पर एक साल में जंग लगता था। शुरू में पानी के बड़े जहाज बनाने, अंग्रेजों ने यहाँ का लोहा उपयोग में लाया। पूरी साड़ी एक अंगूठी से पार हो जाये, ऐसा सुंदर कपड़ा भारत में बनता था व कुल कपड़ा इंग्लैंड से ५ गुणा बनता था। कितनी ही अच्छी बातें थीं और सबसे बड़ा था हिन्दु मुसलमानों में पारस्परिक सांमजस्य। बस! इंग्लैंड के बुद्धिमानों ने इन सब चीजों को समाप्त करने का आदेश दिया। एक और विचारधारा थी कि 'हमें रोकनेवाला कोई नहीं, सो लूटो जितना लूटना है।' हमारे यहाँ बिना अंग्रेजी पढ़े कबीर, संत ज्ञानेश्वर, गुरु रामदास, पाणिनी व चार्वाक हुए। ५०००, ६००० वर्ष पूर्व गणित कर सूर्य ग्रहण व चंद्र ग्रहण बताते थे क्या वे अंग्रेजी पढ़े थे? पर अंग्रेजों के गुलामों ने कहना शुरू किया, "अंग्रेजी नहीं पढ़े तो हम अज्ञानी रहेंगे व पिछड़ जायेंगे" नेहरू, राजगोपालाचारी जैसे लोगों ने सत्यानाश किया। हमारे जैसा ही जापान का हाल था। अंग्रेजी अनिवार्यवाली शालाएं थीं पर जैसे ही जापान स्वतंत्र हुआ ***"अंग्रेजी की अनिवार्यता समाप्त हुई व दस वर्ष तक सारे कान्वेंट स्कूल बंद किये।" क्या जापान कमजोर हुआ? प्रगति न कर सका?*** आज २००८ में भी, चीनी व जापानी वस्तुओं से भारत के बाजार भरे पड़े हैं जो भारतीय वस्तुओं से सस्ती और अच्छी हैं। कौन मूर्ख? हम या जापानी? पूर्व पाकिस्तान ने बंगला देश बनते ही बांगली भाषा को राष्ट्रभाषा घोषित किया व जो भी उर्दू बोलता उसे हिरासत में रखा जाता है। कौन मूर्ख है, बंगलादेशी या हम?

आज भारत में अंग्रेजों जैसा खाना, अंग्रेजी में बता करना, उर्दू व अंग्रेजी बोलने वालों को सम्मान से देखना, चल रहा है। हिन्दी कवि सम्मेलन में, "दो शेर व एक गजल" सुनाने वाले की ऐसी तारीफ होती है कि कोई सच्चा कवि, कवि सम्मेलन में जाता ही नहीं। महाराष्ट्र में सबसे अच्छी कविता वही जिसमें सरकार द्वारा या ब्राह्मणों द्वारा दलितों पर अत्याचार हुआ। पूरा हाल तालियों से गूंजता है व सुंदर शब्दचयन, भावपूर्ण, स्वच्छ निर्दोष कविता को, "इसमें दम नहीं है" कहकर नकारा जाता है। संस्कृति तो ऐसे समाप्त हुई कि यौवन चिन्हों को दिखाना हर लड़की अपना अधिकार समझती है और बिना बायफ्रेंड वाली लड़की को मूर्ख, पिछड़ी कहा जाता है।

जितना भी कपड़ा बनाने वाले कारीगर थे या कुटीर उद्योग थे, सारे बंद कराये गये व महीन कपड़े बनाने वालों के हाथ व अंगूठे काटे गये। बरार, आंध्र, पंजाब इत्यादि जहाँ भी कपास पैदा होता, डरा धमकाकर अंग्रेजों के लिये खरीदा जाता था। स्थानीय बुनकरों को कपास मिलना ही बंद हुआ। गुरुकुल शालाएं बंद हुईं तो संस्कृत का प्रचार बंद हुआ। निम्न वर्ग को "ये ब्राह्मण सदा लूटते रहे" कहकर मत भेद व द्वेष पैदा किया। सारे लौह अयस्क से लोहा बनाने वालों के हाथ पैर बांध कर पीटा गया व जेल की धमकी दी। खनिज निकालना अपराध कहा, तो लोहा उद्योग समाप्त हुआ। सारे मंदिर बनना, बनवाना बंद हुआ। राजाओं को आपस में लड़ाकर, सारे वीर हिन्दुस्थानियों को मारा। सारी फसल बंद कराकर सिर्फ नील उत्पादन पर जोर दिया गया। जमींदार बनाये और जमीन पर के सारे टैक्स दोगुने किये तो किसान भी भूखा मरने लगा। इस प्रकार वीर खत्म, किसान खत्म, मजदूर खत्म, भाईचारा खत्म व संस्कृति खत्म की इन अंग्रेजों ने।

भारत की सतत लूट चली। राजा से, सेना के खर्च के लिये पैसा नहीं स्वर्ण मुद्रायें, हर गांव शहर के प्रमुख पर सोना चांदी संग्रह का दबाव, बेगमें हों या रानियां सबसे धन वसूला जाता था, सिर्फ सोने चांदी के रूप में। मंदिरों, मकबरों यहां तक कि ताजमहल में भी एक मोती न रहा, सारा लूटा गया। टनों सोना जमा होता, अंग्रेज आफिसर मारते थे कुछ हिस्सा, कुछ बड़े अफसर व बाकी ईस्ट इंडिया कंपनी के पास व इंग्लैंड को। ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना पर ५—६ हजार पौंड थे जो ५० वर्षों में ५२ हजार पौंड हुये। १७५६ में व १८१५ में १५० करोड़ बने व जब देश का शासन १८५८ में अंग्रेजों ने लिया तब यह रकम १०० गुणा बढ़ गई थी। करोड़ों करोड़ों लूटे गये। चूसे गन्ने की तरह हो गया था भारतवर्ष १९४७ तक, जब नेहरू जी को अमेरिका से लाल गेहूँ व मक्का लाकर भारतवासियों को खिलाना पड़ा। ऐसी भयानक गरीबी देकर व देश के तीन टुकड़े कर, अंग्रेज चले गये। फ्रांसिसी व पुर्तगालियों ने भी लूटा। वास्को डि गामा जहाज में सोना भरकर ले गया कहते हैं। कैसे हम गरीब न होते? सन १८५० से सतत लूटा गया भारत, मुसलमान व ईसाईयों द्वारा तो कैसे यह सोने की चिड़िया कहता देश हाथ में कटोरा लिये, भिखारी जैसा न होता और फिर भी उनका गुण गाने वाले जयचंद व विभीषण हमारे देश में आज भी हैं व ऊंचे स्थानों पर हैं।

महाप्रलय-द्रष्टा मार्कण्डेय ऋषि

● दीपक शर्मा

ऋषि मार्कण्डेय मृकुण्ड ऋषि के पुत्र हैं। वे अपनी महातपस्या से कल्प—कल्पान्तजीवी महात्मा बने और इन्होंने पुष्पभद्रा नदी के तट पर तपस्या करके नर—नारायण की आराधना की तथा नारायण कृपा से महाप्रलय के दृश्य का दर्शन किया। एक दिन जब मार्कण्डेय घोर तपस्या में लीन थे, अकस्मात् उनके सामने महाप्रलय का दृश्य उपस्थित हुआ। सारी सृष्टि जलमग्न हो गई। सर्वत्र घोर अन्धकार छा गया। महासमुद्र में मार्कण्डेय ऋषि अकेले विचरते हुए बेचैन हो गए थे। ऐसी भीषण स्थिति में प्रभु स्मरण ही एक मात्र आश्रय था। इसी बीच प्रलय के महासागर में उन्हें एक वटवृक्ष दीखा। वटवृक्ष पर एक पत्ते के दोने में ऋषि को एक सोये हुए दिव्य बालक के दर्शन हुए। वह बालक अपने नन्हें—नन्हें हाथों से दाहिने पांव को पकड़कर उसके अंगूठे को मुख में डालकर चूस रहा था। बालरूपी प्रभु की इस मनोरम छवि को देखकर ऋषि भाव—विभोर हो गये और उन्होंने बालमुकुन्द भगवान को शीश झुकाकर नमस्कार करके अपने स्तुति भाव इस रूप में व्यक्त किए—

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम्।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं शिरसा नमामि।।

मार्कण्डेय ऋषि ने भगवान् बाल मुकुन्द को पकड़कर आलिंगन का प्रयास किया, परन्तु भगवान् के श्वास खींचते ही ऋषि नाक के रास्ते उनके पेट में जा पहुंचे। वहां ऋषि ने भगवान् के विराट स्वरूप के दर्शन किए। कुछ देर बाद ऋषि नासिका से बाहर निकले। उन्होंने पुनः प्रभु को पकड़ने का प्रयास किया। तब प्रभु एकदम अन्तर्धान हो गए और महाप्रलय का सारा दृश्य लुप्त हो गया। ऋषि पहले की स्थिति में पुष्पभद्रा नदी के तट पर थे। महाप्रलय तथा प्रभु की अनन्त लीला से अभिभूत होकर वे पुनः तपस्या में लीन हो गये।

हिमाचल प्रदेश में इन महाप्रलय—द्रष्टा मार्कण्डेय ऋषि के अनेक पावन स्थान एवं मन्दिर हैं; जिनके बारे में लोक में अनेक जनश्रुतियां प्रचलित हैं। जैसा कि कुल्लू के निरमण्ड क्षेत्र के इश्वा और नोर गांव में गूर गड़ाई अर्थात् देवता के गूर—चेलों द्वारा की गई

देव वार्ता में ऋषि मार्कण्डेय के बारे में कहा जाता है—

सौरगा चूड़ै, पाथरै फूटै,
पाथरा फुटिआ एक शिव बौणो,
एकी शिवै सात धौड़ी बौणी।

अर्थात् स्वर्ग से उतर का ऋषि मार्कण्डेय धरती के ऊपर पत्थर पर गिर गए, जिससे वह पत्थर टूटकर टुकड़े—टुकड़े हो गया और उसमें एक शिव रूप पिण्डी बनी। वह शिवरूपी पिण्डी सात भागों में विभाजित हुई। यह शिवरूप पिण्डी मार्कण्डेय ऋषि की थी। इस प्रकार एक ऋषि सात देही (शरीर) रूप में अवतरित हुए और फलत: सात भाई कहलाए। जनश्रुति के अनुसार यह घटना लाहौल जनपद के लाहौड़ बझाउड़ नामक स्थान पर उस काल में घटित हुई जब काल कुछ समय पहले द्वापर युग का पहरा छोड़कर कलियुग में प्रविष्ट हो गया था। साधु रूप में ये सातों भाई कुछ आगे जाकर एक शापड़ (पथरीली जगह) पर पहुंचे और वहां गज (लोह दण्ड) से धरती पर प्रहार किया, जिससे वहां धरती से जलधारा फूटी और सात सरोवर बन गये। सातों सरोवरों में एक—एक पिण्डी अस्तित्व में आई। इस स्थान पर ब्राह्मण परिवार की लाहौड़ी पटेटी नामक एक कन्या ने यह चमत्कार देखते ही सोने की कटोरी में गंगा जल तथा चांदी की कटोरी में दूध—घी लाकर इन ऋषियों को अर्पित किया। लाहौड़ी पटेटी को इस से बड़ा सुख—संतोष मिला। सात भाईयों में से एक भाई ने यहां समाधि ले ली। छ: भाई आगे की यात्रा पर चल निकले। वहां से लाहौड़ी पटेटी भी उनके साथ यात्रा में सम्मिलित हो गई। अगला पड़ाव उन्होंने त्रिलोकनाथ में डाला। उनमें से एक भाई ने वहीं समाधि ले ली। अन्य वहां से चलकर रोहतांग पार करके मनाली स्थित ढुंगरी में पहुंचे। ढुंगरी में इनकी भेंट माता हिडिम्बा से हुई। माता हिडिम्बा ने उनसे वहीं रहने का आग्रह किया तथा कहा कि चलता राज मैं स्वयं करूंगी तथा बैठा राज तुम्हें दूंगी। उन्हें यह शर्त स्वीकार नहीं हुई और वहां से चलकर भेखली धार में माता भेखली के पास पहुंचे। माता भेखली ने भी उनसे वैसी ही शर्त रखी कि चलता राज मेरा और बैठा राज तुम्हारा रहेगा जो उन्हें स्वीकार नहीं हुआ।

भेखली धार से प्रस्थान करके वे सोमसी (वर्तमान नाम 'शमशी') में आए। वहां मुंगडू नाम के एक निरंकुश मुआणा (स्थानीय शासक) का वर्चस्व था। उसके पास औलदरणू तथा बौलदरणू नाम के दो बैल थे जो सोने के आवरण से ढके रहते थे। उसका आचरण धर्म विरोधी था। ऋषियों ने उसके आचरण को देखकर उसके परिवार की मति भ्रष्ट कर दी। उसके पूरे परिवार को आपस में ही चोरी के आरोप—प्रत्यारोप की कलह में धकेल

दिया। उसके सारे पुत्र नपुत्रे कर दिए। मुंगड़ू मुआणा अकेला रह गया। उसे जुंए मंगणी (जुएं—खटमल) लग गई। मुआणा भयभीत होकर घरबार छोड़कर नदी के पार निकलने के उद्देश्य से झूले से नदी पार करने लगा। जब वह नदी के मध्य में पहुंचा तो ऋषियों ने अपनी दिव्य शक्ति से चूरी मूशी (चूरी नाम की चुहिया) को झूले के रस्से पर भेज दिया। उस चुहिया ने झूले का रस्सा काट दिया और मुआणा नदी में गिरकर नष्ट हो गया। उसके बाद ये कुल्लू शहर से २० कि०मी० दूर हुरला खड्ड के समीप थरास नामक स्थान पर पहुंचे। एक भाई यहीं पर समाधिस्थ हो गया।

यहां पर आगे जाकर वे बंजार तहसील में मंगलौर नामक स्थान पर पहुंचे और एक भाई ने यहां पर समाधि ले ली। यहां से वे बंजार के साथ बहने वाली खड्ड के किनारे बलागाड़ में गए। उस स्थान पर देवी बड़ासन खनोर (एक वन्य फल) जो धरती पर गिरे थे, उठा रही थी। देवी ने वचन दिया कि यदि वे यहां दो दैंइतरों (दैत्यों) को मारेंगे तो सब कुछ तुम्हारा ही तुम्हारा होगा। उन्होंने दोनों दैंइतरों को मार दिया। देवी बड़ासन अपने वचन से बदल गई और कहने लगी कि यहां चलता राज तुम्हारा और बैठा राज मेरा रहेगा। ऋषियों ने उस पर गज से प्रहार किया और खनोर के वृक्ष के नीचे धकेल दिया। ऋषियों में से एक भाई ने यहीं पर वास किया और अन्य जलोड़ी जोत, सरेऊलसर होते हुए कटरूणी जान्ह पहुंचकर विश्राम करने बैठे। अब वे सात में से दो ही ऋषि भाई थे और तीसरी उनके साथ लाहौड़ी पटेटी थी। विश्राम के समय वह कहीं दूर बैठी थी। यहां से दोनों ऋषि आगे चले और लाहौड़ी पटेटी को वे साथ ले जाना भूल गए। बाद में लाहौड़ी पटेटी को ऋषियों के चले जाने का पता चला, तो वह वहीं के पहाड़ में जाकर बस गई। दो भाई जो वहां से आगे बढ़ चुके थे, स्थान—स्थान पर स्थानीय दुष्ट शासकों—मुआणों और ठाकुरों का अन्त करते हुए इश्वा में जा पहुंचे। इश्वा में विष्णु नाम का एक व्यक्ति रहता था, जिसके अत्याचार से सारा क्षेत्र भयभीत रहता था। उन्होंने कतमोर टिब्बे पर एक मेले में गज प्रहार से उस विष्णु को मार गिराया।

कतमोर टिब्बे से दोनों भाई नोर में गए। नोर में एक अत्याचारी राणा का शासन था। दोनों भाईयों ने राणा का नाश किया और तब उनमें से एक भाई नोर में रहा और दूसरे ने इश्वा में अपना स्थान बसाया। इस प्रकार कुल्लू में मार्कण्डेय ऋषि की स्थान—स्थान पर मान्यता स्थापित हुई। ऋषि मार्कण्डेय के भिन्न—भिन्न स्थान तथा इनसे सम्बन्धित यह लोकवार्ता हिन्दू संस्कृति के ***'एकोऽहं बहुस्याम्'*** के मौलिक सिद्धान्त के अनुकूल है, जिसमें एक दिव्य सत्ता देश और काल की परिस्थितियों की अपेक्षा के अनुसार अनेक

रूपों में प्रकट होती है। हिमाचल प्रदेश में कुछ अन्य स्थानों पर भी मार्कण्डेय ऋषि की बहुत मान्यता है। मण्डी जिला के औट, थलौट आदि स्थानों पर मार्कण्डेय ऋषि के मन्दिर हैं। एक मार्कण्डेय ऋषि का तीर्थ जिला हमीरपुर की भोरंज तहसील में डेरा परोल के समीप कुनाह खड्ड पर है। जिला सिरमौर में नाहन—पांवटा साहिब सड़क मार्ग के समीप बड़ा वन से मार्कण्डेय ऋषि के नाम पर मारकण्डा नदी का उद्गम हुआ है। यह नदी बड़ा वन से काला अम्ब तक २४ किलोमीटर की यात्रा जिला सिरमौर में तय करके हरियाणा प्रान्त के अम्बाला जिले में प्रविष्ट होती है। जिला बिलासपुर में मारकण्डा तीर्थ है, जहां मार्कण्डेय ऋषि की तप:स्थली है। कहा जाता है कि इस स्थान पर महर्षि मार्कण्डेय का महर्षि वेदव्यास के साथ धर्म संवाद हुआ करता था।

गांव व डाकघर — निरमण्ड
जिला कुल्लू (हि०प्र०)

ॐ

तस्यैतस्द जनो नूनं नायं वेदोरुविक्रमम्।
काल्यमानोऽपि बलिनो वायोरिव घनावलि:।।

जिस प्रकार वायु के द्वारा उड़ाया जाने वाला मेघसमूह उसके बल को नहीं जानता, उसी प्रकार जीव भी बलवान् काल की प्रेरणा से भिन्न—भिन्न अवस्थाओं तथा योनियों में भ्रमण करता रहता है, किन्तु उसके प्रबल पराक्रम को नहीं जानता।

भीमद्भागवत पुराण—३/३०/१

मातृ विभूति

कण्णगी के सतीत्व की शक्ति

● कृष्णानन्द सागर

दक्षिण भारत में स्थित कावेरी पट्टण के एक सम्पन्न व्यापारी की इकलौती बेटी थी कण्णगी। कावेरी पट्टण चोल राज्य के अन्तर्गत आता था। कण्णगी बहुत ही रूपवान् और अद्वितीय गुणों से युक्त थी। उसका विवाह एक अन्य धनाढ्य व्यापारी के पुत्र कोवलन से हुआ। विवाह में माता–पिता ने कण्णगी को एक बहुमूल्य नूपुरों का जोड़ा भी दिया, जिसमें नौ–नौ माणिक्य जड़े हुए थे।

कण्णगी और कोवलन का जीवन बड़े सुख से चल रहा था। तभी एक धूमकेतु उनके जीवन में आ उपस्थित हुआ। माधवी नाम की एक अन्य नर्तकी पर कोवलन आसक्त हो गया और उसी के पास रहने लगा। पति–वियोग में कण्णगी बहुत ही दुखी रहने लगी। वह काफी दुबली हो गई। किन्तु उसके मन में अपने पति के बारे में किसी भी प्रकार का रोष नहीं आया। वह नित्य ईश्वर से यही प्रार्थना करती कि मेरा पति जहाँ भी हो, सुखी रहे। उसे माधवी के प्रति भी ईर्ष्या नहीं हुई।

एक दिन उसे कोवलन का सन्देश मिला– "यदि मैं तुम्हें माधवी की दासी बनने के लिए कहूँ तो क्या तुम ऐसा कर पाओगी?" कण्णगी ने बिना किसी लाग–लपेट के इसका उत्तर भिजवाया– "मैं तो आपकी आज्ञाकारिणी हूँ। आपकी आज्ञा से किसी भी स्त्री की सेवा करने में मुझे कोई संकोच नहीं, प्रसन्नता ही होगी। किन्तु हाँ, किसी अन्य पुरुष की कभी नहीं।"

कण्णगी के इन शब्दों का प्रभाव कोवलन पर क्या हुआ, यह तो स्पष्ट नहीं। लेकिन इन शब्दों ने माधवी के अन्त:करण को गहराई तक छू लिया। उसका सारा घमण्ड चूर–चूर हो गया। वह सोचने लगी कि मैंने तो कोवलन के साथ सौदा किया है, लेकिन कण्णगी ने सच्चे हृदय से समर्पण किया है। समर्पण में सौदेबाजी का कोई स्थान नहीं होता। उसे अपनी हीनता और कण्णगी की श्रेष्ठता व पवित्रता साफ दिखाई देने लगी। वह अपने घर से कण्णगी के पास गई और कण्णगी के पैरों में पड़ गई तथा रोते हुए बोली – "बहन! मुझे क्षमा कर दो। मेरे कारण आपको बहुत कष्ट झेलने पड़े हैं।"

कण्णगी ने उसे उठाकर अपनी छाती से लगा लिया और कहा–"बहन! यदि मेरे पति

का मन मुझसे हटकर तुम्हारे प्रति आकर्षित हो गया, तो इसमें तुम्हारा क्या दोष है? अपने पति को सब प्रकार से सुखी रखना, यह मेरा धर्म है। यदि तुम्हारे द्वारा उनको सुख प्राप्त होता है तो मुझे तुम्हारा आभार ही मानना चाहिए।"

कण्णगी के इस निश्छल प्रेम का धीरे–धीरे कोवलन पर भी असर होता गया। उसे अपनी गलती का अनुभव होने लगा। वह मन ही मन बहुत पछताने लगा और एक दिन माधवी व सम्पूर्ण वैभव छोड़कर वापिस कण्णगी के पास आ गया। कण्णगी की साधना सफल हुई।

कण्णगी ने उसे सलाह दी कि हम कहीं दूर जाकर नए सिरे से अपना जीवन प्रारम्भ करते हैं। अत: दोनों मदुरा की ओर चल पड़े। मदुरा पहुँच वे भद्रकाली मन्दिर के पास एक घर में रहने लगे। एक दिन कोवलन को काफी चिन्तित देख कर कण्णगी बोली– "स्वामी! आप धनाभाव के कारण चिन्तित न हों। आप मेरा यह नूपुर बेचकर इससे प्राप्त धन से कोई व्यापार आदि आरम्भ कर दीजिए।" ऐसा कह उसने माता–पिता से प्राप्त नूपुरों के जोड़े में से एक नूपुर उसे दे दिया। कोवलन ने बड़े भारी मन से वह नूपुर उससे लिया और बेचने के लिए एक स्वर्णकार के यहाँ जा पहुँचा। वह स्वर्णकार मदुरा के एक राजपरिवार का भी काम करता था और लोभ के वशीभूत हो बड़ी चालाकी से उसने महारानी का एक नूपुर चुरा लिया हुआ था। राज–सेवक बड़ी तत्परता से उस नूपुर की तलाश कर रहे थे। इसलिए स्वर्णकार के मन में यह डर बना हुआ था कि कहीं मैं पकड़ न लिया जाऊँ।

अत: कोवलन जब उसके पास पहुँचा और उसने कण्णगी का नूपुर उसे दिखाया तो स्वर्णकार के शैतानी दिमाग में तुरन्त एक योजना कौंध गई। कोवलन को बैठने के लिए कह कर वह पुलिस चौकी गया और वहाँ बताया कि महारानी के नुपुर को चुराने वाला नूपुर सहित मेरे यहाँ बैठा है। राज–सेवक उसके साथ चल पड़े और उसके यहाँ बैठे कोवलन को गिरफ्तार कर ले गये।

कोवलन को राजा नण्डुचेलियन के सामने उपस्थित किया गया और उसके पास से मिला नूपुर भी उन्हें दिया गया। राजा उस समय राजसभा समाप्त करके अपने राजमहल में जाने वाला था। इसलिए न तो उसने नूपुर की कोई जाँच पड़ताल की, न कोवलन की कोई बात सुनी और न ही राजकर्मचारियों से कोई पूछताछ की। उसने सीधे कोवलन को नूपुर चोर मानते हुए उसे मृत्यु दण्ड की सजा सुना दी। राजाज्ञा के अनुसार कोवलन को वध–स्थल ले जाकर उसका सिर धड़ से अलग कर दिया गया। स्वर्णकार खुश था कि

अब उसके ऊपर कोई शक नहीं करेगा और महारानी का बहुमूल्य नूपुर उसी के पास रहेगा।

सांयकाल तक कोवलन वापिस घर नहीं पहुँचा। कण्णगी की चिन्ता बढ़ गई। रात्रि हो गई। तब तक नगर में नूपुर चोर के वध का समाचार फैल गया। यह समाचार कण्णगी तक भी पहुँचा। वह दौड़ी—दौड़ी वधस्थल पर गई और अपने पति की लाश को पहचान लिया। हाय, यह क्या हो गया? एक निष्पाप व निष्कलंक व्यक्ति को यह किस बात की सजा? हे ईश्वर! यह कैसे हो गया? वह विलाप करने लगी। उसके विलाप को सुन बहुत से लोग वहाँ इकट्ठे हो गए। सहसा वह उठी। पति के रक्त से अपने मस्तक पर तिलक किया और उसके कटे हुए मुण्ड को अपने हाथों में ले क्रुद्ध—मुद्रा में मदुरा नरेश नण्डुचेलियन के राजमहल की ओर चल पड़ी। अन्य लोग उसके पीछे—पीछे। अब वह पूरी तरह से काली का अवतार प्रतीत हो रही थी। राजमहल के द्वार पर पहुँच वह उच्च स्वर में राजा को सम्बोधित कर कहने लगी— "ओ अन्यायी राजा! बाहर निकल। देख, तेरी आज्ञा से एक निरपराध की हत्या हुई है। कैसा है तेरा न्याय? बड़ा नाम सुना था मदुरा—नरेश का। जरा अपना कारनामा तो देख।" उसकी क्रुद्ध वाणी को सुनकर राज महल के अनेक लोग वहाँ आ गए। अन्त में स्वयं राजा भी आ गया और उसके इस प्रकार से आर्तनाद का कारण पूछा। कण्णगी ने अपने हाथ के नरमुण्ड को दिखाते हुए कहा— "राजा! यह मेरे पति हैं। तेरी आज्ञा से इनका वध किया गया है। मैं यह जानने आई हूँ कि उनके किस अपराध के बदले तुमने इनको मृत्युदण्ड दिया है?"

राजा ने उत्तर दिया— "महारानी का चोरी हुआ नूपुर इस के पास से मिला है। हमारे राज्य के नियम के अनुसार चोरी के लिए मृत्युदण्ड की व्यवस्था है। उसने चोरी की, इसलिए मृत्युदण्ड दिया गया है।" कण्णगी— "जो नूपुर इनके पास से मिला, आपने उसकी अच्छी तरह जाँच कर ली थी कि वह महारानी का ही है?" राजा को अब अपनी गलती का अहसास हुआ। वह दबी जबान से बोला— "नहीं, जाँच तो नहीं की।" कण्णगी फुफकार उठी— "यही है तेरी न्याय करने की पद्धति? मँगा उस नूपुर को और साथ ही महारानी के दूसरे नूपुर को।"

राजा ने दोनों नूपुर मँगवाए। मिलान किया तो दोनों अलग—अलग थे। कोवलन से प्राप्त नूपुर में नौ माणिक्य जड़े थे, जब कि महारानी के नूपुर में माणिक्य थे ही नहीं। राजा असमंजस में पड़ गया। कण्णगी बोली— "राजा! थोड़ी देर ठहर। मैं अभी आती हूँ।" कण्णगी दौड़कर अपने आवास पर गई और दूसरा नूपुर ले आई। राजा को दिखाते हुए वह बोली— "राजा! देख, इसमें भी नौ माणिक्य जड़े हैं। यह मेरे नूपुरों का जोड़ा है। मैंने

ही इसमें से एक नूपुर बेचने के लिए अपने पति को दिया था, जिसे तूने अपनी महारानी का कहकर मेरे पति का वध करा दिया। तू बता, तेरी महारानी का दूसरा नूपुर कहाँ है?"

तभी राजसेवक उस स्वर्णकार को पकड़ कर ले आए। उसके आभूषणों के भण्डार में से महारानी का चोरी गया दूसरा नूपुर भी मिल गया। स्वर्णकार काँपता हुआ महाराज से दया की भीख माँगने लगा। राजा ने अपना माथा ठोक लिया। वह पश्चात्ताप करने लगा— "हाय, मैंने यह क्या कर डाला? यह तो भयंकर पाप मेरे से हो गया है। मेरी बुद्धि कहाँ चली गई थी? अब मैं निरपराध कोवलन के प्राण कैसे लौटाऊँ?" कण्णगी बोली— "अरे मूर्ख राजा! अब इस पश्चात्ताप का कोई लाभ नहीं। तूने अन्याय किया है और जिस राज्य में अन्याय होता हो, वह सुरक्षित नहीं रह सकता।" अपने पति के मुण्ड को दोनों हाथों से ऊपर उठाकर उसने गर्जना की— "मैं शाप देती हूँ कि यह मदुरा नगर जल कर भस्म हो जाए।" अग्नि देवता ने उसके आदेश का अक्षरश: पालन किया। सारा मदुरा नगर जलकर राख हो गया।

यह थी कण्णगी के सतीत्व की शक्ति। जलते हुए मदुरा नगर को छोड़कर कण्णगी चेर राज्य की राजधानी बंजीनगरम् चली गई। वहाँ के एक ऊँचे पहाड़ पर एक वटवृक्ष के नीचे वह अन्न—जल त्याग कर ध्यान मग्न हो बैठ गई। लोगों का विश्वास है कि उसके पति की मृत्यु के चौदहवें दिन आकाश से एक दिव्यरथ उतरा, जिसमें देवगाणों के साथ उसका पति कोवलन भी विराजमान था। देवगणों ने कण्णगी को भी उस रथ में चढ़ा लिया और वह रथ आकाश मण्डल को भेदता हुआ दृष्टि से ओझल हो गया। तमिलनाडु के बंजीनगरम् में देवी कण्णगी का आज भी एक अति प्राचीन मन्दिर विद्यमान है और लोग दूर—दूर से वहाँ दर्शन के लिए आते हैं। तमिल महाकवि इलंगो ने देवी कण्णगी की इस विलक्षण कथा पर आधारित एक पूरा महाकाव्य ही 'शिलप्पधिगारम्' नाम से रचा है।

जागृति प्रकाशन
एफ—१०९, सैक्टर—२७,
नौएडा।

जय जय रघुवीर समर्थ

• प्र० ग० सहस्त्रबुद्धे

सुप्त जाति में जीवन का संचार कर उसे जाग्रत करने के लिए महापुरुषों का आविर्भाव होता है। समाज की समष्टिगत सब पीड़ायें, विफलतायें, दु:ख, कष्ट और अपमान की अनुभूतियाँ जहाँ एकत्रित होकर वर्तमान दुरवस्था से मुक्ति का मार्ग खोजती हैं और तदनुसार निश्चय गूँज उठता है, उस उद्धारक को ही महापुरुष कहा जाता है। महापुरुष न केवल अपने युग की परिस्थितियों का आकलन करता है, वह न केवल समाज में व्याप्त रोग के कष्टों से स्वयं व्यथित होता है वरन् वह एक सफल चिकित्सक और कुशल रचनाकार बनकर नूतन आवेश, उत्साह, प्रेरणा और आशा के वायुमण्डल में समाज को वैभव पथ पर अग्रसर कर देता है। इसीलिये कहा गया है कि महापुरुष अपने युग का निर्माता होता है। किन्तु महापुरुष यदि अपने युग की आवश्यकताओं का पुंजीभूत रूप है तो यह भी स्पष्ट है कि इस रूप के प्रकट होने के पूर्व परिवर्तन की आत्यन्तिक और अनिवार्य अभिलाषा की भवभूमि सर्वसाधारण समाज के बीच निर्माण होती है। इसी भावभूमि पर महापुरुष अपने कार्य का श्रीगणेश करते हैं। महापुरुष के आविर्भाव के पूर्व निर्मित होने वाली यह सामाजिक भाव–भूमि महापुरुष से किसी भी प्रकार कम महत्व की नहीं होती। गंभीरतापूर्वक यदि विचार किया जाय तो यह मूक साधना अधिक महत्व की है। जन–जागरण की इस ऊषा वेला के हाथों से ही महापुरुष मध्याह्न के सूर्य जैसा ज्योतित होकर अंधकार–विनाश की सफलता के शीर्ष बिन्दु पर आ उपस्थित होता है। छत्रपति शिवाजी महाराज के आविर्भाव के पूर्व भी जन–जागरण और सामाजिक सिद्धता की साधना पूर्ण–मनोयोगपूर्वक की गई थी।

छत्रपति शिवाजी के पिता शहाजी और अन्य सामन्तों ने मराठों को राजनीति तथा युद्ध–कला के पाठ पढ़ाये थे। माता जीजाबाई ने शिवाजी के और उनके साथियों के अन्त:करण सुसंस्कारित किये तथा उनमें श्रेष्ठ भाव जागृत किये। शिवाजी के आविर्भाव के पूर्व अनेक श्रेष्ठ संन्यासियों व सन्तों ने बौद्धिक तथा आध्यात्मिक पक्ष सम्भाला। जिनमें अन्य सन्तों की अपेक्षा श्री रामदास जी का कार्य वैशिष्ट्यपूर्ण था। वातावरण निर्माण के लिये वह तत्काल उपकारक रहा।

'जय–जय रघुवीर समर्थ' की घनगम्भीर गर्जना से रामदास ने सम्पूर्ण महाराष्ट्र

जागृत किया। वे सदैव भ्रमण करते रहते थे। गांव–गांव जाते थे। घर–घर पहुंचते थे। व्यक्ति–व्यक्ति से परिचय कर लेते थे। फिर सोचते थे, किस व्यक्ति में कौंन से अवगुण हैं और उसके गुण कैसे बढ़ाये जा सकते हैं तथा अवगुण कैसे घटाये जा सकते हैं। रात्रि में, किसी मन्दिर में सैकड़ों लोग एकत्रित होते थे। कथा–कीर्तन होता था। उपदेश दिया जाता था। हार्दिक आवेश के साथ रामदास ग्रामवासियों को कहते, ***"राम ही सबसे श्रेष्ठ देव हैं। उन्हीं का भजन–पूजन करना चाहिए। वर्तमान कठिन परिस्थिति में वे ही हमें उबार सकते हैं। प्रभु रामचन्द्र की भक्ति लिये आवश्यक है, उनके अनन्य भक्त हनुमान की आराधना करना, राम–कार्य की सिद्धि के लिये उनके जैसा बल–बुद्धिनिधान होने का भाव अन्त:करण में धारण करना, इसलिये हर ग्राम में हनुमाजनी का मन्दिर होना चाहिये। हनुमानजी आदर्श रामभक्त थे और बलभीम थे। हनुमान जी का मन्दिर तब पूर्ण होगा जब साथ में व्यायामशाला होगी। बाल, युवक प्रतिदिन एकत्रित होंगे और व्यायाम करेंगे। हनुमान जी शिक्षा देंगे कि राम की सच्ची भक्ति कैसी होती है। मर्यादा पुरूषोत्तम राम! देवताओं के मुक्तिदाता राम! उन्मत्त दशमुख रावण के विनाशक राम! सत्वचनीराम! शबरी के बेर प्रेम से ग्रहण करने वाले राम! शिला–स्वरूप अहिल्या के संजीवक राम! श्रेष्ठ आदर्शों की रक्षा हेतु व्यक्तिगत सुखों पर तिलांजलि छोड़ने वाले राम! प्रजापालक राम! सर्वशोकभय–परिहारक राम! रघुकुलतिलक राम! उसी प्रभु रामचन्द्र की उपासना करें तो राम आवेंगे और फिर रामराज्य भी निर्माण होगा।"***

रामदास जी के श्रेष्ठ जनोद्धारक साधुस्वरूप को देख तथा उनके वचनों को सुनकर जनता के हृदय में मानों विद्युत–संचार हो जाता। लोग कार्य करना प्रारम्भ कर देते। विधर्मियों द्वारा गिराये हुए मन्दिरों का जीर्णोद्धार होता। नई मूर्तियाँ बनाई जातीं या पुरानी खोजी जातीं। गत काल में, आक्रामकों के भय से, कुंओं में तालाबों में, या नदियों में सहस्त्रों मूर्तियां छिपाई गई थीं। कितनी सन्दूकों में बन्द कर जमीन में गाड़ दी गई थीं। रामदास ने उन मूर्तियों को निकलवाया और पुन: प्रस्थापित किया। जनता के अन्दर भक्ति आवेश निर्माण किया। लोग कहने लगे "देखते हैं, कौन आता है, हमारे मन्दिर तोड़ने के लिए ! अपने आराध्य के प्रति अत्यन्त श्रद्धा रखकर मारेंगे और मरेंगे परन्तु अपने श्रद्धाकेन्द्रों का अपमान नहीं होने देंगे।"

स्वाभिमान और स्वकर्तव्य 'हेतु' कष्ट सहने की तत्परता का भाव, समाज को जाग्रत करने का भाव समर्थ रामदास की वाणी में सहज ही नहीं आया था। बड़े त्याग, कष्टसाध्य तपस्या और भक्ति के बाद उन्हें यह अधिकार प्राप्त हुआ था।

बालक नारायण

महाराष्ट्र में गोदावरी नदी के किनारे जांब नाम का एक छोटा–सा गांव है। वहाँ सूर्याजी पन्त ठोसर नाम के एक जमदग्नि गोत्र के ऋग्वेदी ब्राह्मण रहते थे। सूर्याजी पन्त का निजी व्यवसाय कुलकर्णी याने ग्राम लेखक का था। अपना व्यवसाय वे तत्परता और सेवा भाव से करते थे। जनता उनको बहुत मानती थी, क्योंकि इन सब गुणों के साथ ही साथ सूर्याजी पन्त श्रेष्ठ ईश्वरभक्त थे। सूर्याजी पन्त की पत्नी का नाम राणू बाई था, उन्हें दो पुत्र हुए। बडे का नाम था गंगाधर। वे 'श्रेष्ठ' नाम से प्रसिद्ध हुए। छोटे का नाम था नारायण जो समर्थ रामदास स्वामी के नाम से विख्यात हुए। नारायण का जन्म रामनवमी के दिन कलियुगाबद ४७१०, शक संवत् १५३० विक्रमी संवत् १६६५, ईस्वी सन् १६०८ में हुआ।

यह बालक बचपन से ही असामान्य प्रतीत होता था। जब वह सात–आठ वर्ष का रहा होगा तब एक बार, वह अपने घर के एक कोने में, शांत चित्त से बैठा–बैठा कुछ सोच रहा था। उसके समवयस्क साथी बाहर आँगन में खेल रहे थे। बहुत शोरगुल के साथ खेल हो रहा था। परन्तु नारायण का ध्यान उधर जरा भी नहीं था। वह अपनी ही धुन में मस्त था। उसे वहाँ इस प्रकार चुपचाप बैठा देख, उसकी माँ ने उससे कहा, 'बेटा नारायण, वहाँ क्यों बैठे हो? खेलने क्यों नहीं गये? इतनी गम्भीरता से क्या सोच रहे हो?

नारायण ने मां से अपनी व्यथा कही, 'माँ', मैं विश्व की चिन्ता कर रहा हूँ। कैसे सब क्षेमकुशल होगा? देव–देवालय किस प्रकार सुरक्षित रहेंगे? तीर्थस्थानों का पावित्र्य कैसे बना रहेगा? गृहस्थाश्रमियों का जीवन सुचारू रूप से कैसे प्रस्थापित होगा? सब लोगों की क्या गति होगी....." बालक के मुख से यह उत्तर सुनकर माता राणूबाई अवाक् होकर देखती रह गई।

पिताजी कुछ रुग्ण थे। प्रारम्भिक पूजापाठ जपजाप्यादि ठीक से नहीं कर पाते थे। उन्होंने सोचा कि यह सब अब गंगाधर को सौंपना चाहिये। उन्होंने गंगाधर को मंत्रोपदेश और अनुग्रह दिया। तब नारायण बहुत रूष्ट हुआ। हठ करने लगा कि मुझे भी मंत्र दो। पिताजी ने बहुतेरा समझाया, "अभी तुम छोटे हो, नासमझ हो, बड़े हो जाओगे तब देखा जायेगा।" तब भी नारायण नहीं माना। वे नाराज हो गये। कहने लगे, "तुम कितने नटखट हो, मैं तुम्हें मंत्र नहीं दे सकता।" नारायण ने तत्काल उत्तर दिया, 'आप चिन्ता न करें। मुझे साक्षात् प्रभु रामचन्द्र उपदेश देंगे।' गांव के बाहर छोटी–सी झाड़ी थी वहाँ वह तपस्या करने चला गया। बहुत समझा–बुझाकर उसे घर लाया गया। सूर्याजी पन्त की शीघ्र ही मृत्यु हो गयी। अब तो नारायण की गतिविधियां निर्बाध बढ़ती चली गई। वह मित्र मंडलियों को जुटाकर गुप्त योजनायें बनाने लगा। अत्याचारी विधर्मियों को समाप्त करने

की बात खुलेआम कहने लगा। बड़े भाई गंगाधर घबरा गये। माँ राणूबाई भी बहुत चिन्तित हो उठी।

सावधान

राणूबाई ने सोचा, इस लड़के का अब विवाह कर देना चाहिये। परिवारिक बंधनों में फँसकर यह कुछ सांसारिक लोगों जैसा जीवनयापन करने लगेगा। आज बेसिर–पैर की उड़ाता है। तब वह सब भूल जायेगा। नारायण तो नहीं–नहीं कर रहा था परन्तु राणूबाई ने उसका विवाह निश्चित कर डाला। धूम–धाम से तैयारियाँ होने लगीं बाजे बजने लगे। महाराष्ट्र की प्रथानुसार फेरे फिरने के पूर्व वधू–वर के मध्य अन्तरपट (एक कपड़े का परदा) खड़ा कर देते हैं और पुरोहित मंगलाष्टक कहते हैं। हर मंगलश्लोक के बाद 'सावधान! सावधान! का घोष होता है।

जैसे ही पुरोहित ने 'सावधान' कहा, नारायण एकाएक विवाह मंडप से भाग निकला। 'सावधान' शब्द सुनकर वह सावधान हो गया। सांसारिक मायामोह के बन्धनों में न बंधने का उसने तत्काल निर्णय कर लिया। मानों सावधान कहते ही उसके लिए दूसरा ही 'अंतरपट' खुल गया। वधू–वर का नहीं, जीव–शिव का, आत्मा और परमात्मा का विवाह सम्पन्न हुआ।

नदियों और पहाड़ों को पार करता हुआ, सनसनाते तीर जैसा वह निकला और नासिक पंचवटी में पहुंच गया। प्रभु रामचन्द्रजी के निवास से पावन हुई उस भूमि में उसने तपश्चर्या प्रारम्भ कर दी। बाह्म मुहुर्त पर याने अतिप्रभात में तीन बजे से उसकी दिनचर्या चालू हो जाती थी। प्रतिदिन छः घंटों तक, पुण्यसलिला गोदावरी में खड़ा रहकर वह अपना जप–तपादि पुरश्चरण करता था। दोपहर में केवल पांच घर भिक्षा माँगता था। जो भी रूखी–सूखी मिल जाय उसे उदरस्थ कर वह अध्ययन करने बैठता था। रात्रि में मन्दिर जाकर भजन–कीर्तन में सोत्साह भाग लेता था। यह क्रम सतत बारह वर्ष तक चलता रहा।

कहा जाता है कि एक रात्रि में साक्षात् प्रभु रामचन्द्रजी ने उसे दर्शन दिये और आगे के कार्य के लिये आदेश दिया। तब नारायण पंचवटी से निकल पड़ा। उस समय तपस्या के कारण निखरा हुआ चौबीस–पचीस वर्ष का वह तेजस्वी तपःपूत युवक जिधर जाता उधर हजारों की संख्या में जनता आकृष्ट हो जाती। वह स्वयं को राम का दास, 'रामदास' कहता और भिक्षा माँगते समय 'जय जय रघुवीर समर्थ' की घोषणा करता। अतः लोग उसे समर्थ रामदास कहने लगे।

देश भ्रमण

समर्थश्री रामदासजी ने देश भर में भ्रमण किया। मथुरा, आयोध्या, काशी आदि अनेक स्थानों में उन्होंने देखा कि हमारे पुण्यपुरुषों के पवित्र स्थान जानबूझकर बिखण्डित किये गये हैं। सर्वत्र उन्हें दु:ख एवं दैन्य ही दैन्य दिखाई दिया। परकीय एवं परधर्मीय शासन का क्रूर दमनचक्र उन्हें अति निकट से देखने के लिए मिला। सब धर्म, कर्म नष्ट हो गये थे। निरपराध लोग चींटियों की तरह कुचल दिये जाते थे। तरह–तरह के राक्षसी अत्याचार देखकर रामदास जी क्रोधित हो जाते थे। प्रभु रामचन्द्र जी का स्मरण करते थे। फिर कुछ शान्त होकर सोचते थे– 'यह परिस्थिति कैसे बदलेगी? जनता में वास्तविक धर्म जागृति कैसे होगी? स्वराज्य कैसे स्थापित होगा? लोग रामायण, महाभारत, गीता पढ़ते है। परन्तु उनका वास्तविक अर्थ नहीं समझते। कुछ लोग परलोक साधना की बातें करते हैं परन्तु इतनी सादी बात भी नहीं समझते कि इहलोक सुधरेगा तभी परलोक सुधरेगा। लोगों को यह ठीक ढंग से समझाना पड़ेगा। गांव–गांव में बलोपासक केन्द्र उत्पन्न करने होंगे। नेता निर्माण करने होंगे। उन्हें संगठन शास्त्र सिखाना होगा।'

शहाजी जब आदिलशाही की सेवा के बहाने दक्षिण के हिन्दू राजाओं को जगाने का और जुटाने का प्रयत्न कर रहे थे, माता जीजाबाई जब सूर्यकुलभूषण अपने छोटे शिवाजी का लाड़प्यार से पालन करती हुई सुनहले स्वप्नों को चित्रित कर रही थी, और धीरे–धीरे बाल शिवाजी के मन पर स्वधर्म के संस्कार अंकित कर रही थी, तब यह तरुण ब्रह्मचारी देश भर में घूम रहा था। पीड़ितों की चीखें सुन रहा था। हिन्दू जनता की भगदौड़ और उनको लूटा पीटा जाता देख रहा था। अपने भाइयों की वैसी दयनीय अवस्था देखते–देखते उनका चित्त व्याकुल हो जाता, आँखों से अश्रु बहने लगते और वे अपने मन में दृढ़ निश्चय कर लेते, कहते, "इस परिस्थिति को हमें बदलना होगा। जनता में संगठन कौशल निर्माण करना होगा। नया धार्मिक उत्थान करना होगा। रघुकुलतिलक प्रभु रामचन्द्र ! आपकी कृपा होगी तो यह सब मैं अवश्य करूँगा। प्राणों की बाजी लगाकर करूंगा।"

कार्यारम्भ

सम्पूर्ण देश का भ्रमण कर रामदास फिर महाराष्ट्र में आये। लगभग उसी समय शिवाजी भी दादाजी कोण्डदेव के साथ पूना आ पहुंचे। पूना के आसपास गांव–गांव में घूमकर शिवाजी अपने खड्गधारी मित्र जुटाने लगे तो उसी के निकटवर्ती प्रदेश में वाई, सतारा, कोल्हापुर आदि स्थानों के आस–पास घूमकर रामदासजी अपने शिष्य–प्रशिष्य तैयार करने लगे। उन्हें संगठन शास्त्र पढ़ाने लगे। उनके द्वारा स्थान–स्थान पर मठ स्थापना कराने लगे। शिवाजी जहाँ स्वयं नहीं पहुंचते थे वहीं रामदास जी का अधिक संचार होता था। एक प्रकार से वे शिवाजी के स्वराज्य स्थापना के राजकीय कार्य के लिए सांस्कृतिक,

बौद्धिक एवं भावात्मक एकता की भूमिका बांधते थे। आदिलशाही प्रदेश में या मुगलों के प्रदेश में शिवाजी या उसके साथी खुले आम तो नहीं घूम सकते थे। परन्तु रामदास या उनके शिष्यों की वह बात नहीं थी। वे साधु थे, जनसाधारण तक कहीं भी पहुंच सकते थे। मुसलमानों के पास पहुंचते थे तो उन्हें भी श्रेष्ठ मानव उपकारी रचनाएं उनकी बोलचाल की भाषा में सुनाते थे। रामदासजी के रचे हुए अनेक हिन्दी कवन्ध उपलब्ध हैं उनमें कुछ ऐसे भी हैं, जिमें उर्दू शब्दों का प्रयोग बहुत अधिक है।

रामभक्ति

रामदास जहाँ पहुंचते वहाँ रामभक्ति का उपदेश देते। श्री सन्त तुलसीदासजी के सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है। कहते हैं वे जब बृन्दावन गये और उन्होंने मुरलीधर कृष्ण कन्हैया की छवि देखी तो कहा, 'भगवन् आप नि:सन्देह बहुत सुन्दर दिखते हैं परन्तु ***"तुलसी मस्तक तब नवे, धनुषबाण लो हाथ"***। रामदासजी के बारे में भी ठीक ऐसी ही कहानी प्रचलित है। वे जब पंढरपुर गये तब उन्होंने बिठोवा (भगवान श्रीकृष्ण) की मूर्ति देखी जो कमर पर हाथ रखे खड़ी है। तब उन्होंने कहा– "यथे उभा का रामा? मन मोहन मेघश्यामा ?" अर्थात् "हे मनमोहन मेघश्याम रामचन्द्र प्रभु आप यहाँ इस प्रकार कमर पर हाथ धरे क्यों खड़े हैं? देखिये देश की क्या स्थिति है, कैसे–कैसे अत्याचार हो रहे हैं ? मंदिर तोड़े जा रहे हैं। मूर्तियां फोड़ी जा रही हैं, कितनी ही स्त्रियों का अपहरण हो रहा है। रामजी, उठाइये आप अपना धनुष" कथा आगे है कि विठोबा ने सचमुच ही दंडधारी राम का रूप ले लिया और तब कहीं रामदासजी ने उन्हें दंडवत प्रणाम किया। कथा का तात्पर्य यही है कि रामदास ने यत्र–तत्र–सर्वत्र राम के आदर्श की प्रस्थापना की। सबको उन्होंने यही आवाज दी, "हमें वीर चाहिए। देशधर्म पर मिटने वाले वीर चाहिए। राम का आदर्श चाहिए।"

उनका लिखा हुआ साहित्य प्राचीन मराठी साहित्य में सबसे निराला है। उसमें तत्कालीन परिस्थिति का जीता–जागता प्रतिबिंब है, ऐहिक उत्कर्ष की महत्ता है, प्रयत्नवाद है, ध्येयवाद है, लोकसंग्रह है, व्यवहार कुशलता के पाठ हैं अर्थात् अन्य साधु–सन्तों के समान भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, अध्यात्म आदि पारमर्थिक विषय तो विपुल प्रमाण में हैं ही, परन्तु उन्हीं के साथ–साथ उपरिनिर्दिष्ट ऐहिक विषयों पर भी जोर दिया है। उनकी शैली या भाषा कुसुम कोमल नहीं है। लालित्य की भी उन्होंने कभी परवाह नहीं की। सीधीसादी भाषा में उन्होंने अपने विचार प्रगट किये। परन्तु हार्दिक विश्वास और अनुभूतियां होने के कारण उनमें बड़ा ओज भरा है। व्यथित आर्त अंत:करण से उत्स्फूर्त भावनाओं का वह शब्दरूप प्रभाव है।

उपदेश

एक स्थान पर वे कहते हैं, "उठो जागो और उद्योग करो। अरे, यह भी कोई जीवन है ? खाने को अन्न नहीं, न ओढ़ने–विछाने को वस्त्र हैं, न घर बांधने की सामग्री है। सब अनाथ और अगतिक हो गये हैं। अत्याचारों के मारे जीना दूभर हो गया है। हजारों लोग धर्मभ्रष्ट हो गये हैं। छोटे–छोटे अनाथ बालक रोते–सिसकते दर–दर घूम रहे हैं। किसी की कोई भी बात नहीं बन रही है। अल्प–स्वल्प योजना भी असफल हो जाती है। बड़ों–बड़ों की सूझबूझ लुप्त हो गयी है। सतत भय और चिंता ने सब को ग्रस लिया है। करें भी, तो क्या करें ? ग्रामान्तर किया जाय तो वहाँ भी निश्चित यही स्थिति होगी। और फिर परदेश में खाने को कहां से मिलेगा ? पास धन जो नहीं है। कोई भी तारणोपाय नहीं बचा। भीख भी नहीं मांग सकते। सभी जब भिखारी बन गये हैं तब कौन किससे माँगेगा और कौन किसको देगा ? आज हर कोई दुखी है । देखो कैसा कठिन समय आ गया है कि कोई किसी का नहीं रहा.....सम्पूर्ण देश की हालत बिगड़ गयी है। कोई भी एक दूसरे के पराये हो गये हैं। सब उद्योग व्यापार ठप्प हो गया है। धर्म–अधर्म, जाति–पाति, कुलशील, मान मर्यादा कुछ भी बचा नहीं। कितना भयानक समय है ? कैसे हम पार पावेंगे ? आज किसी की न इज्जत है न आबरू। जिसकी लाठी उसकी भैंस का अमल है। होनहार अटल है। हमारा सब पुण्य नष्ट हो गया है। इसलिए इस पुण्यभूमि भारतवर्ष में आज ऐसे कटु फल चखने पड़ रहे हैं।"

अन्य स्थान पर वे लिखते है– "आज तो सबके मरने के सिवाय दूसरी गति नहीं बची है। कई तो नदियों में कूद पड़े। अनेकों ने जहर खा लिया, अनेकों ने स्वत: को अग्निसमर्पित किया। हरे ! इस भयानक दु:खमय अवस्था का वर्णन भी कैसे करें ?.... कितना भी काम करो, पेट भरने योग्य कमाई नहीं होती। कुछ प्राप्ति हुई भी तो दुष्ट दस्यु लूट ले जाते हैं। घर जलाये जाते हैं, बहू–बेटियों को भगाया जाता है। न कहीं न्याय है, न नीति। डंडे की हुकूमत चल रही है। हर कोई अर्थदास और पेटू बन गया है।"

फिर कहते हैं– "....इस विकट परिस्थिति को हमें बदलना होगा। कोई भी कार्य करने से ही होता है। प्रचण्ड आन्दोलन खड़ा करो तब ही यह देश सामर्थ्यशाली बनेगा। परन्तु ध्यान रखो, जो आन्दोलन ईश्वर–भक्ति पर अधिष्ठित होता है, वही सफलता प्राप्त करता है। कर्तव्यदक्ष बनो, मरने–मारने पर उतारू हो जाओ। धर्म की रक्षा के लिए घर–गृहस्थी तो छोड़नी ही पड़ती है। प्रियजनों का वियोग तो सहन करना ही पड़ता है।"

"दुष्ट म्लेच्छों की संख्या अधिक बढ़ गई है। बहुत दिनों से इन लोगों ने उत्पात मचा रखा है। अत: हमें निरन्तर सावधान रहना चाहिए युद्ध करते हुए मारते–मारते जो मरते हैं, वह वीरगति को प्राप्त होते हैं। अथवा जीतकर वापस आ गए तो फिर क्या

देखना है ? महद्‌भाग्य प्राप्त होता है। एक मन्दिर, एक देवमूर्ति भी दुष्टों ने साबुत नहीं छोड़ी। ऐसा समझिए कि अपना सब धर्म डूब गया है। प्रत्येक मराठा को जुटाओ। उनमें एकत्व निर्माण करो और महाराष्ट्रधर्म का विस्तार करो। इस विषय में यदि हम चिंता न करें तो हमारे पूर्वज हम पर हँसेंगे। जो नास्तिक हैं, देवद्रोही हैं, उन्हें खत्म करना ही होगा। अन्त में ईश्वरभक्तों की ही जीत होगी। यह बिल्कुल नि:संशय बात है ईशचरणों को मस्तक पर धारण कीजिये और सर्वत्र प्रलय मचा दीजिए। धर्मसंस्थापन के लिए देश भर में भी यदि मारकाट करनी पड़ी, आततायियों को ठोकना, डुबोना पड़ा, तो वह सब करना ही होगा।"

शिवाजी जब अभिषेकयुक्त सिंहासनाधिष्ठित हुए तब रामदासजी को अत्यधिक आनन्द हुआ। उनकी आँखों से आनन्दाश्रु बहने लगे। मानो जीवन कृतकृत्य हुआ। उस समय की उनकी भावना की परिचायक 'आनन्दवन भुवन' नामक एक सुन्दर कविता है। उसमें वे लिखते हैं– "अब तो यहाँ से धर्म का विस्तार ही होगा। धर्म के साथ–साथ लक्ष्मी भी आवेगी। अहा हा ! इस महाराष्ट्र में सर्वत्र संतोष ही संतोष भर गया है। वह पापी अवरंगू (औरंगजेब) अब तो डूब मरा। म्लेच्छों का प्रचण्ड संहार हुआ। इस महाराष्ट्र में उध्वस्त तीर्थक्षेत्रों को फिर से प्रस्थापित किया गया है। अहा ! स्नानसंध्या करने के लिए अब विपुल शुद्ध जल उपलब्ध हो गया है। इस महाराष्ट्र में जप–तप अनुष्ठानादि धार्मिक कार्य सुचारू रूप से सम्पन्न हो सकेंगे। सब विद्रोही, पाखंडी नास्तिक उड़ गए। शुद्ध अध्यात्म का विकास हुआ। अब इस महाराष्ट्र में सब जीवन राममय हो गया है। राम ने ही दिया है और राम ही उसका सुख पा रहा है।"

रामदासजी ने देश भर में बार–बार संचार भी किया, मठादि स्थापित कर संगठन भी खड़ा किया और विपुल साहित्य भी लिखा। वे कभी जनता की भीड़ में बैठकर उपदेश कार्य करते थे। तो कभी गहन अरण्य में गुप्त–गुहा में मनन–चिंतन या लेखन करने बैठते थे। विद्युत वेग से उनका संचार होता था। जहाँ जाते वहाँ वे नवचैतन्य निर्माण करते थे। शिवाजी की मृत्यु के कारण उनके मन को और शरीर को बहुत बड़ा धक्का पहुंचा। सत्तर–इकहत्तर वर्ष की आयु हो गई थी। शिवाजी के पुत्र संभाजी की करतूतों के कारण वे और भी अधिक व्यथित हुए। संभाजी को जो उन्होंने उपदेश लिख भेजा, उसमें उन्होंने लिखा– शिवाजी का चित्र आँखों के सामने रखो, उनके प्रताप का स्मरण करो। उनकी प्रयत्नशीलता का तथा संगठन–चातुर्य का स्मरण करो।" शिवाजी के रूप में रामदास जी राम की ही प्रतिमूर्ति देखते थे उनकी सर्व आशा–आकांक्षाएं शिवाजी में साकार हों गई थीं। शिवाजी के बाद रामदास अधिक दिनों तक जी नहीं सके। चैत्र शुक्ल पूर्णिमा के दिन कलियुगाब्द ४७८२ शक संवत् १६०२, विक्रमी संवत् १७३६,ईस्वी सन् १६८० में वे परमज्योति में विलीन हो गए। रामदासजी का साहित्य एवं चरित्र पढ़ने के बाद ही शिवाजी के चरित्र का वास्तविक आकलन हो पाता है।

विष्णुकान्त शास्त्री के काव्य में राम

• डा० परितोष बैलगो

राम ने जीवन की जिस पूर्णता का स्पर्श किया था, राम ने उदात्त आदर्शों को जो क्रियात्मक रूप दिया था, राम के नेतृत्व में उनके अनुजों तथा अनुज सन्तानों ने जिस विशाल धर्मराज्य की स्थापना की थी, वह सब प्राचीन विश्व को भलीभांति ज्ञात है। राम भारत की आत्मा है। भारत में जितने रामपुर नाम से शहर हैं अन्य नाम से नहीं। राम न होते तो भारतवर्ष रूस यूरोप के सदृश नाना–देश–मय महाद्वीप होता, राष्ट्र नहीं। राम ने इस विराट् आसेतु हिमालय भूखण्ड को एकतन, एकप्राण कर दिया। आदिकवि महर्षि वाल्मीकि के शब्दों में ***'समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवान्–इव'*** राम हिमाचल–सागर–पर्यन्त समग्र भारत की विराट् मूर्ति हैं। राम भारत के कण–कण में रम रहे हैं। ' जीवन पथ पर चलते–चलते' पुस्तक में विष्णु कान्त शास्त्री ने अन्तर्मन विभोर भाव से राम की महिमा का बखान किया है। वे एक स्थान पर कहते हैं–

बहुत कठिन है राम जगत् में राह तुम्हारी चलना,
कहना सुगम, निभाना दुर्गम, कैसी–कैसी छलना।
अनजाने ही अहं ग्रास कर लेता मेरे मन को,
काम–क्रोध की कठिन आग में निशिदिन होता जलना।।[1]

कवि राम से प्रभावित हैं किन्तु कहता है कि संसार में तुम्हारी राह चलना बेहद कठिन है। संस्कृति की ज्येष्ठ, श्रेष्ठ दुहिता कविता राम में सर्वाधिक रमी है। जितनी और जैसी कविता राम पर रची गई है उतनी और वैसी कविता संसार में किसी देव या मानव आदि पर नहीं रची गई। विष्णुकांत शास्त्री प्रभु श्रीराम से प्रार्थना करते हैं–

मुझे शक्ति दो नाथ। कर सकूं निज पर संयम
काम, क्रोध को जीत सकूं धारण कर शम–दम।
जगजीवन के मायामय आकर्षण से बच,
तुम्हें समर्पित हो पाऊँ बन निरहं, निर्मम।।

राम पर वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, कम्बन, कृत्तिवास, तुलसीदास, केशवदास आदि कवियों ने महान् ग्रंथों की रचना की है। प्राचीन अर्वाचीन, उत्तर–दक्षिण, निर्गुण–सगुण, निराकार–साकार, सब राम में एक हो गए। राम 'दशरथ जातक' आदि

बौद्ध वाङ्मय में विद्यमान हैं, राम 'पउम चरिउ' जैन वाङ्मय में भी विद्यमान हैं। निर्गुण मार्गियों ने रामनाम की महिमा गाई है, कबीर नानक इत्यादि में राम भरे पड़े हैं, रैदास ने रामायण रची थी। इस युग में भी राम का प्रभाव कम नहीं हुआ। महात्मा गांधी, राममनोहर लोहिया, रामकिंकर उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, बालकृष्ण शर्मा, निराला इत्यादि सब राममय हो गए। विष्णुकांत शास्त्री राम को लक्ष्य करते हुए लिखते हैं—

तरी अहल्या जिनके पावन मृदुल स्पर्श से
प्रेम—हठीले केवट से जो गये पखारे।
जो जग का दुख हरने कांटों से क्षत—विक्षत
राम! तुम्हारे चरण प्रेरणा स्रोत हमारे।

राम पर रचित सुन्दर रचनाएं गणनातीत हैं। राम से सम्बन्धित लोककथा एवं लोकगीत साहित्य अत्यंत महान है तथा उसमें अनवरत रूप से वृद्धि होती जा रही है। राम काव्य के चिरन्तन महानायक हैं। काव्य का आरम्भ उनके चरितगान के साथ होता है। राम काव्य के अनन्त प्रेरक हैं। भारत की चिरन्तन धर्म परम्परा के अमर प्रतीक गोस्वामी तुलसीदास इस तथ्य से स्वभावत: परिचित थे—

भगति हेतु विधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई।।
रामचरित सर बिनु अहवाए। सो श्रम जाइ न कोटि उपाए।

विष्णुकांत शास्त्री जी कहते हैं—

जाने किस—किस रूप में, तुम आते हो नाथ
देते मन को आसरा, सदा निभाते साज।

राम चिरन्तन हैं, राम अनन्त हैं। रामलीला चिरन्तन है, रामलीला अनन्त है। क्यों? क्योंकि जीवन में उदात्त चिरन्तन, अनन्त, अपेक्षित है, आवश्यक है। राम उदात्त का आकार, प्रकार थे, राम उदात्त का आधार हैं। राम शस्त्र व शास्त्र थे। विष्णुकांत शास्त्री कहते हैं—

कोई अपना दूर चला जब जाता
मन पीड़ा से कातर हो मुरझाता।
सिवा राम के कौन सांत्वना उसको,
दे सकता है, नहीं समझ में आता।।

भारतीय संस्कृति के समष्टि रूप का दर्शन यदि हमें कहीं मिलता है तो मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र में। इस महापुरुष का चरित्र इतना लोकप्रिय रहा है कि भारत की विभिन्न प्रांतीय भाषाओं में ही नहीं, भारतीय संस्कृति से प्रभावित अन्य देशों की जन भाषाओं में भी रामकथा को लेकर एक विशाल साहित्य का निर्माण हुआ है। रामायण में

कथारस है और भक्ति की इस रसकथा ने राम को जन–जन तक पहुंचा दिया है। रामभक्तों के लिये राम का नाम ही एक ऐसा जहाज है, जो सबको संसार सागर से पार लगा सकता है। राम का नाम लेकर बाल्मीकि डाकू से ऋषि बन गए थे, तो सामान्यजन क्यों नहीं उत्कर्ष प्राप्त कर सकता? राम सुमिरि, पछताइगा कहकर कवियों ने सबको रामभक्ति की ओर उन्मुख किया है। विष्णुकांत शास्त्री कहते हैं–

मैं निस्साधन, दीन–हीन प्रभु, और न कोई मेरा
एक गांठ सौ फेरे वैसे मुझे भरोसा तेरा।
काल–व्याल मुंह बाये, जाने अगले पल क्या होगा,
अत: इसी पल अपने चरणों में दे मुझे बसेरा।।

कवि जीवन कठिन परिस्थितियों से परेशान नहीं होता क्योंकि रक्षक रूपी राम उनके साथ हैं–

जीवन का पथ कितना दुर्गम, रह रह कर सिहरूं,
हर ऊंची–नीची घाटी में, तुमको याद करूं।
चूर–चूर तन, सांस धौंकनी, बढ़ता हूं फिर भी
तुम मेरे रक्षक हो स्वामी, तब क्यों कहीं डरूं।।

आधुनिक युग में भी रामकथा परम्परा विकास अविरूद्ध नहीं हुआ यह निरन्तर प्रवाहमान है। कवि विष्णुकांत शास्त्री सब कुछ प्रभु राम के सहारे छोड़ देने को कहते हैं–

छोड़ दो, सब राम पर ही छोड़ दो
जिन्दगी का रुख उधर ही मोड़ दो।
तुम जगत् के साथ भटके हो बहुत
अब स्वयं को जगत्पति से जोड़ दो।।

भारतीय मनुष्य के लिये राम एक ऊर्जा स्रोत हैं, जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुंच सकता है और कवि विष्णुकांत शास्त्री राम से कहते हैं कि मेरी लाज निभाना–

मुझे नहीं कुछ आता स्वामी मैं मूरख अज्ञानी,
जग तो ठोंक बजा कर लेता तू तो औढरदानी।
निभा न मुझसे कोई साधन, हुई न मुझसे पूजा,
द्वार पड़े की लाज निभाना, तेरी रीति पुरानी।।

विष्णुकांत शास्त्री कहते हैं कि राम सारे जगत को प्रकाशित करते हैं। उनकी सत्ता के कारण हमको यह सारी सृष्टि दृष्टिगोचर होती है–

प्रभु तेरे पथ का मैं दुर्बल गिरता–पड़ता राही

मन में प्रीति, अश्रु नयनों में, मुख में नाम सदा ही।
मैं न पहुंच पाऊं यदि तुझ तक तो आ तू ही मुझ तक
मुझको संजीवन दे सकती तेरी कृपा—सुधा ही।।

कवि विष्णुकांत शास्त्री कहते हैं कि बुद्धि तत्त्व की सबसे ऊंची भूमिका है। बुद्धि के सात गुण बताये गये हैं—

शुश्रुषा श्रवणं चैव, ग्रहणं धारणं तथा
ऊहापोहार्थविज्ञानं, तत्त्वज्ञानं च धीगुणा:।।

और दूसरी ओर कहते हैं—

बुद्धि तुम्हारी करुणा की कुछ थाह न पाती
बात बिगड़ती बिगड़—बिगड़ कर बन—बन जाती।
जीवन यात्रा के अनुभव हैं अद्‌भुत सचमुच
दूब शिला पर उगती, ज्वाला जल बन जाती।।

कवि जीवन क्रम के बारे में प्रभु राम से कह रहे हैं—

बदला—बदला सा लगता है जीवन का क्रम
बिसर गया सा लगता अपना मदमय उपक्रम।
लगता भ्रान्तिविलास सदृश सब करतब अपना
किसी हाथ के एक खिलौने का क्या विक्रम।।

अन्यत्र आश्रय रूपी श्रीराम—

जटिल जाल में फंसे हुए, असहाय सरीखे,
रोये छटपट—छटपट कर, चिल्लाये, चीखे।
झेल—झेल कर कठिन वेदना, तन, मन जर्जर
प्रभु! ऐसे में एकमात्र आश्रय तुम दीखे।

सन्दर्भ :

१. रामप्रसाद मिश्र, विश्व कवि तुलसी और उनके काव्य, पृ० २९१—२९३
२. विष्णुकांत शास्त्री, जीवन पथ पर चलते—चलते, पृ० ८०, २९३, २९४
३. विपाशा — अंक ८४ — पृ० ५४
४. विष्णुकांत शास्त्री, ज्ञान और कर्म (ईशावास्य — अनुवचन), पृ० १५८

ब्लॉक न० ३७/१, नाभा एस्टेट,
शिमला— १७१००४

देवी-देवताओं का महासमागम : कुल्लू का दशहरा

• टेक चन्द ठाकुर

कुल्लू का दशहरा देश–विदेश में प्रसिद्ध है। अपनी विशिष्ट देव संस्कृति के कारण यहां का दशहरा समृद्ध इतिहास व परम्परा का सुन्दर समन्वय है। इसी सुन्दर समन्वय में लोक देवताओं का महासंगम होता हैं। लोक देवताओं का यही महासंगम इस अन्तर्राष्ट्रीय लोक महोत्सव का सबसे बड़ा आकर्षण है। देश भर में आश्विन शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि 'विजय दशमी' को दशहरा रावण दहन के साथ समाप्त होता है परन्तु कुल्लू का दशहरा तो उस दिन भगवान रघुनाथ की विजय यात्रा के साथ शुरू होकर सातवें दिन लंका दहन के साथ समाप्त होता है।

कुल्लू घाटी को देवभूमि की संज्ञा से अभिहित किया गया है। घाटी के प्रत्येक गांव में इन देवी देवताओं के देहुरे (मंदिर) हैं। यदि इनकी गिनती की जाए तो इनकी संख्या एक हजार का आंकड़ा पार करती नजर आएगी। एक समय दशहरा के अवसर पर लगभग ४०० देवी देवता भाग लेते थे। ये वही देवी देवता, नाग, यक्ष, सिद्ध, ऋषि–मुनि, सत्ती और योगिनियां हैं, जिसे भारतीय धार्मिक वाङ्मय भरा पड़ा है। शिव, कार्तिकेय, विष्णु, कपिल, कणाद, गौतम, वशिष्ट, धौम्य, पराशर और जमदग्नि आदि असंख्य वैदिक तथा पौराणिक देवी–देवताओं के गांव–गांव में मन्दिर मिलेंगे। अधिकांश देवी–देवता तो उनके तत्सम नामों से ही पुकारे जाते हैं परन्तु सैकड़ों ऐसे भी देवी–देवता हैं जिनके नाम समय के साथ–साथ विकृत हो चुके हैं। अत: उनकी पहचान अनुभव से ही होती है। बस इन्हीं नाना नामरूप देवी–देवताओं का महासंगम है कुल्लू का दशहरा। इन सैंकड़ों देवी–देवताओं के अधिष्ठाता देवता हैं श्री रघुनाथ जी। वास्तव में अयोध्या से जब भगवान रघुनाथ (श्रीराम) जी की प्रतिमा कुल्लू लाई गई, उसके स्वागत में ही घाटी के सैंकड़ों देवी देवता कुल्लू पधारे थे। इसके बाद से ही देवी–देवताओं के इस महासमागम का श्रीगणेश हुआ।

कुल्लू दशहरा की पृष्ठभूमि में एक घटना उल्लेखनीय है। कलियुगाब्द ४७३९ से ४७६४ ईस्वी सन् १६३७–१६६२ के बीच कुल्लू का प्रतापी राजा जगत सिंह राज किया करता था। उनके राज्य के अन्तर्गत रूपी क्षेत्र में टिप्परी नामक गांव में एक धर्मगुरू ब्राह्मण रहता था। दूर–दूर तक उसकी ख्याति थी। किसी ने द्वेषवश राजा के कान भरे कि ब्राह्मण के पास एक पत्था (लगभग सवा किलोग्राम) सुच्चे मोती हैं। कीमती होने के कारण इनका

राज्य के खजाने में होना जरूरी है। राजा ने अनुचर भेज कर ब्राह्मण को अपने यहां बुलाया और उससे मोती खजाने में जमा करवाने के लिये कहा। परन्तु ब्राह्मण ने राजा से सच—सच कहा कि उसके पास सुच्चे मोती नहीं हैं। और राजा को किसी ने गलत सूचना दी है। परन्तु राजा नहीं माना और उसने ब्राह्मण को इस शर्त के साथ छोड़ दिया कि वह एक दिन स्वयं उसके घर सुच्चे मोती लेने आएगा। अत: वह तैयार रहे।

राजहठ के आगे ब्राह्मण विवश था। समय निकट आता गया। कोई उपाय नहीं सूझ रहा था और उस पर राजा का आतंक। किंकर्तव्यविमूढ़ ब्राह्मण के आगे अपने बचाव का कोई चारा न था। निश्चित दिन राजा ब्राह्मण के घर की ओर चल दिया। जैसे ही राजा टिप्परी गांव पहुंचा कि ब्राह्मण ने अपने परिवर सहित अपने घर को आग लगा दी और स्वयं तेजधार शस्त्र से अपने अंग काट—काट कर आग में भेंट करने लगा। वह शरीरांग को आग में भेंट करता जाता और कहता जाता, 'ले राजा, तेरे एक पत्था सुच्चे मोती।' इस प्रकार ब्राह्मणा ने अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली परन्तु स्वत्व की रक्षा की।

इस घटना ने राजा को बुरी तरह विचलित कर दिया। भोजन में कीड़े नजर आने लगे और पानी लहू की तरह दिखने लगा। बिस्तर मे कांटे चुभने लगे और सारे शरीर में कीड़े रेंगते नज़र आने लगे। राजा ने अन्न, जल त्याग दिया। दरबारी और प्रजा परेशान हो उठी।

ज्योतिषी ने राजा को प्रायश्चित करने की सलाह दी। उसने राजा से कहा कि इस ब्रह्महत्या से पाप मुक्ति का उपाय उसके गुरू 'पौहारी बाबा' बता सकते हैं। ये चमत्कारी बाबा नग्गर के पास झीड़ी की एक गुफा में रहते थे। राजा ने पौहारी बाबा से उपाय पूछा तो बाबा ने कहा यदि अयोध्या जाकर राम और सीता की उन मूर्तियों को लाकर यहां प्रतिष्ठित कर दिया जाएं, जिन्हें भगवान राम ने अश्वमेध यज्ञ के समय बनाया था। ऐसा करने से ही राजा का प्रायश्चित हो सकेगा। तब राजा ने दामोदर दास नामक एक ब्राह्मण को अयोध्या भेजा। चतुर दामोदर दास पुजारी बनकर अयोध्या में रहने लगा। एक दिन प्रबंधकों की आंखों में धूल झोंकर ब्राह्मण दामोदर दास दोनों मूर्तियों को उठाकर चम्पत हो गया। कुछ विद्वानों के अनुसार ये मूर्तियां ब्राह्मण ने प्रबंधकों से आग्रह करके लाई थी। कुल्लू पहुंचकर इन मूर्तियों का समारोहपूर्वक स्वागत हुआ। घाटी के सैंकड़ों देवी—देवता भगवान रघुनाथ जी की अगवानी हेतु कुल्लू पहुंचे। इस अवसर पर बहुत बड़े अनुष्ठान का आयोजन किया गया। राजा जगत सिंह का कष्ट दूर हुआ। उसने अपना समूचा राज्य रघुनाथ जी को सौंप दिया और फिर रघुनाथ जी का 'छड़ीबरदार' (सेवक) बनना स्वीकार किया। इस घटना के बाद से ही कुल्लू दशहरा प्रारम्भ हुआ। अत: राजा जगत सिंह को ही कुल्लू दशहरा शुरू करने का श्रेय जाता है।

चूंकि राजा जगत सिंह ने समूचा राज्य भगवान रघुनाथ जी को सौंप दिया, अत: रघुनाथ जी स्वत: समस्त राज्य के स्वामी हो गए। बाद में घाटी के सभी देवी–देवताओं को उनके कार्य संचालन के लिये जमीनें दी गई जिस में यह भी अपेक्षा की कि देवी–देवता दशहरा के अवसर पर रघुनाथ जी के यहां उपस्थिति देंगे। तभी से यह परम्परा निर्बाध रूप से चली आ रही है। कुल्लू के ढालपुर मैदान में सभी देवी–देवताओं के स्थान बने हुए हैं जहां दशहरे के दिनों में ये देवता अपना पड़ाव डालते हैं।

भगवान रघुनाथ जी के बाद देवी हिडिम्बा का स्थान है। मनाली के पास डुंगरी नामक गांव में देवी का मंदिर है। इसी देवी को यहां के पालवंशीय राजाओं को बसाने का श्रेय जाता है। देवी द्वारा उन पर किये गए अनेक उपकरों के कारण ही देवी को यहां के राजा 'दादी' कहते हैं। दशहरे का प्रारम्भ देवी के यहां पधारने पर ही होता है और सात दिन बाद जब समापन होता है तो तब भी देवी की उपस्थिति अनिवार्य होती है।

भगवान रघुनाथ जी को यहां 'ठाकुर' के नाम से जाना जाता है। दशहरे का पहला दिन 'ठाकुर निकलना' के नाम से जाना जाता है। इस दिन भगवान रघुनाथ जी के रथ को रंग–बिरंगे दुपट्टों से सजाया जाता है। इस रथ के भीतर ठाकुर जी की प्रतिमा होती है। यह प्रतिमा रघुनाथ के मन्दिर सुलतानपुर से भव्य शोभा यात्रा में लाई जाती है। पहियों वाले सजे रथ को लम्बे–लम्बे रस्सों के साथ दशहरा मैदान के एक छोर से खींचा जाता है। सैंकड़ों देवी–देवताओं की पालकियां साथ–साथ चलती हैं। ढोल नगाड़ों और नरसिंघा करनालों की तुमुल ध्वनि से सारा वातावरण गूँज उठता हैं। रथ को दशहरा मैदान के ठीक बीच में लया जाता है जहां प्रतिमा को रघुनाथ जी के शिविर में स्थापित किया जाता है। अंतिम दिन रथ को एक बार फिर मैदान से लंका बेकर तक ले जाया जाता है जहां पर लंका दहन कर तथा कुछ पशु बलि चढ़ाकर दशहरे का समापन होता है। यह दिन लंका दहन कहलाता है। लंका दहन के पश्चात् वापिसी यात्रा होती है। रथ यात्रा की सामाप्ति पर रघुनाथ जी अपने सुलतानपुर मन्दिर में आते हैं और सभी देवता अपने–अपने स्थानों को लौटते हैं।

उद्यान विकास अधिकारी
कुल्लू(हि०प्र०)

कला श्रेष्ठता का उत्तुंग : मृकुला देवी मन्दिर

• रमेश जसरोटिया

मृकुला देवी का जगत् प्रसिद्ध मन्दिर हिमाचल प्रदेश के वर्तमान लाहुल–स्पिति जिले के उदयपुर स्थान पर चन्द्रभागा उपत्यका में स्थित है। उदयपुर का प्राचीन नाम मारूल अथवा मर्गुल था जो समीप में ही तीव्रगति से बहने वाले नाले के कारण पड़ा हो सकता है। इस स्थान की प्राचीनता के विषय में इतिहासकारों को कोई विशेष जानकारी नहीं है।

ऐतिहासिक दृष्टि से प्रथम बार उदयपुर का संदर्भ चम्बा के तत्कालीन राजा उदयसिंह (१६९०–१७२०ईस्वी) के काल में आता है। सुप्रसिद्ध कला विशेषज्ञ एवं यात्री ए० एच० फ्रैंक ने उदयपुर में स्थापित मृकुला देवी की मूर्ति का उल्लेख डॉ० जॉन फिलिप वोगल से पहले किया था। डॉ० वोगल भारत सरकार के अन्तर्गत पुरातत्व विभाग (उत्तरी वृत्त) के अधीक्षक थे। चम्बा के विषय में तब उन्होंने अपनी सर्वेक्षण रपट एण्टीक्वीटीज़ ऑफ चम्बा स्टेट में लिखा है "श्री ए० एच० फ्रैंक ने मुझे बताया कि मृकुला देवी को लाहुल के बौद्ध दोर्जे फागमों के रूप में पूजते हैं जिसे संस्कृत में वज्र वाराही के नाम से जाना जाता है। नेपाल में यही देवी भव (शिव) की अर्धांगिनी भवानी के नाम से प्रसिद्ध है।"

लाहुल क्षेत्र, जो कई शताब्दियों तक लद्दाख और कुल्लू राज्य के अधीन रहा, का कुछ भाग चम्बा के राजा छतरसिंह (१६६४–९०) ने जीतकर अपने राज्य में शामिल कर लिया। उसके पुत्र उदयसिंह कुल्लू राजा के साथ कुल्लू और चम्बा के बीच सीमा निर्धारण के लिए यहां आया था, अत: उसी के नाम से इस स्थान का नाम उदयपुर पड़ा।

काष्ठ–उकेरण, वास्तु–शिल्प और अलंकरण के आधार पर कलाविद् मृकुला देवी मन्दिर को भरमौर की लक्षणा देवी और छतराड़ी में स्थापित शक्तिदेवी के पश्चात् की अन्तिम कड़ी मानते हैं। पहाड़ की ढलान पर स्थित इस मन्दिर की तालयोजना शास्त्रीय विधान के अनुकूल आयताकर है जो एक ऊंची पीठिका पर प्रतिष्ठित है। पहाड़ी शैली में निर्मित इस मन्दिर की आधारभूमि से शिखर तक की कुल ऊंचाई १७.७२ मीटर है। मन्दिर का भीतरी भाग १०× ७×३.६ मीटर है जिसके पश्चिम में गर्भगृह का निर्माण हुआ है। इस गर्भगृह का बाह्य भाग ३.१५ मीटर लम्बा व ३.१० मीटर चौड़ा है। गर्भगृह में लगभग १५ सैं० मी० ऊंची एक पीठिका निर्मित है जिस पर ३० सैं० मी० ऊंची मृकुला देवी की

प्रतिमा विराजमान है। मन्दिर के प्रवेश द्वार तक पहुंचने के लिए इसके अग्रभाग में प्रस्तर—निर्मित सोपान है। मन्दिर का वास्तु—स्थापत्य गुप्तकालीन देवालयों की अनुकृति लिए हुए है जिसमें एक साधारण से गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणापथ और ऊपरी भाग ढलानदार छत से ढका रहता है। काष्ठनिर्मित होने के कारण इस प्रकार की स्थानीय शैली के मन्दिरों का बाह्य आवरण समय के प्रभाव और प्राकृतिक आपदाओं से बनता बिगड़ता रहता है। इसी कारण इस मन्दिर की काष्ठकला को कलाविद् दो भागों में विभक्त करते हैं। प्रथम—क्लासिकी प्रभाव लिए हुए आठवीं शताब्दी की काष्ठकला जब राजा मेरुवर्मन के प्रोत्साहन के फलस्वरूप चम्बा की काष्ठकला अपने चर्मोत्कर्ष पर थी। दूसरे—स्थानीय प्रभाव लिए हुए वे काष्ठ फलक इत्यादि जो सोलहवीं शताब्दी के आस—पास के हैं। स्थानीय प्रभाव के इन काष्ठ फलकों का कालनिर्धारण मूल देवी—प्रतिमा की पीठिका पर १६वीं शताब्दी की शारदा लिपि में उत्कीर्णित लेख के आधार पर किया जा सकता है। देवी की पुन: स्थापना के समय मन्दिर का जीर्णोद्धार करना एक तथ्य है। काल निर्धारण की पुष्टि काष्ठकला की शैली को अवलोकित करने पर भी हो जाती है।

पूर्वकालिक आठवीं शताब्दी की काष्ठकला में मन्दिर का प्रवेशद्वार, चार प्रमुख स्तम्भ, जिन पर छत टिकी है व कुछ काष्ठ फलक सम्मिलित हैं जो उत्तर गुप्तकालीन कला की छाप से स्पष्ट प्रभावित दिखाई देते हैं। देवगृह की शेष काष्ठकला में दो अतिरिक्त स्तम्भ, दो अन्य द्वारपाल व छत के कुछ फलक आदि सम्मिलित हैं। इसे उत्तरकालीन माना जाना उचित ही प्रतीत होता है। प्रवेशद्वार के दायीं ओर दहलीज है और उसी से जुड़ा है एक कक्ष। दहलीज को देव अभिषेक के लिए निर्मित किया गया है तथा कक्ष देव—भण्डार के रूप में प्रयुक्त होता है। इस कक्ष में पूजन सामग्री, देव—वाद्ययन्त्र, खाद्यान्न, मेले—जातरों आदि उत्सवों और संस्कारों के अवसरों पर प्रयोग में लाई जाने वाली सामग्री संगृहीत रहती है।

मन्दिर का प्रवेशद्वार सात शाखाओं में विभक्त है। मोटिफों, प्रतीकों व आकृतियों आदि से सुसज्जित इन शाखाओं में दर्शाई गई वसंत पट्टिकाएं, कल्पलताएं व गंगा जमुना शास्त्रीय विधानानुसार जीवन, चेतना व स्फूर्ति की प्रतीक हैं। इसके अतिरिक्त यहां कीर्तिमुख, किन्नर, गन्धर्व, विद्याधर आदि भी दृष्टिगोचर होते हैं। विष्णु के दशावतारों में से नौ मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण तथा बुद्ध भी इसमें दर्शित हैं। उर्ध्व पट्टिका के ललाट बिम्ब पर अर्धपर्यंक आसन में चुतर्भुजी गणेश प्रतिष्ठित हैं। गणेश के दोनों ओर निर्मित कश्मीर शैली के पंचारम में वज्रासन की ध्यानमुद्रा लिए दैव्य आकृतियां भी उत्कृत हैं जिन्हें डॉ० वोगल ने नवग्रह माना है।

मन्दिर का विशेषाकर्षण परिपक्व व सुगंधित देवदार की लकड़ी पर उकेरी गई इसकी

विशाल छत है। काष्ठ—उकेरण—कार्य सर्वश्रेष्ठ होने के कारण ही यह मन्दिर विश्व कला—मानचित्र पर अपना विशिष्ट स्थान बनाए हुए है। छत पर हुई इस नक्काशी के अध्ययन व अवलोकन हेतु प्रतिवर्ष सैंकड़ों कलाविद्, जिज्ञासु और आगन्तुक संसार के कोने—कोने से यहां आते हैं। मन्दिर की छत सबसे सुरक्षित मानी जाती है क्योंकि वह मानवीय छेड़छाड़ की सीमा से दूर, मौसम आदि के प्रभाव से मुक्त तथा मूलरूप के विघटन से बची रहती है। मन्दिर की उत्तर काष्ठकला में रामायण और महाभारत के दृष्य दर्शाए गए हैं, जिनका सौष्ठव एवं सौन्दर्य देखते ही बनता है। भारतीय मूर्तिकला में रामायण व महाभारत पर आधारित विषय भक्तिकाल की देन माने जाते है। परन्तु हिमाचल प्रदेश में इनका आगमन कुछ समय पश्चात् १६वीं शताब्दी के अन्त में हुआ। छत के पूर्वी भाग में महाभारत पर आधारित अर्जुन और कर्ण के मध्य युद्ध का दृश्य बड़े ही मनोहारी ढंग से प्रस्तुत हुआ है। चार—चार घोड़ों से जुते रथ पर आसीन दोनों ही योद्धा धनुष को प्रत्यञ्चा पर चढ़ाए युद्धरत हैं। अर्जुन के रथ पर दर्शित कपिध्वज शिल्पी की कलानिपुणता, शिल्पज्ञान और सूझबूझ का परिचायक है। एक अन्य दृश्य विराट द्वारा गौहरण का है। छत के पश्चिमी भाग में महाकवि तुलसीदास कृत रामचरित मानस के सुन्दरकाण्ड और युद्धकाण्ड पर आधारित कुछ घटनाक्रमों को उकेरा गया है। हनुमान द्वारा महेन्द्र पर्वत को लांघने का दृश्य भी मुख्य रूप से आकर्षित करता है। इस दृश्य में लंका के चारों ओर फैले समुद्र में मछली आदि जीव उकेरे गए हैं। इस में एक ओर जहां हनुमान को विशालकाय व बृहद् दिखाया गया है वहीं दूसरी ओर उन्हें अपना लघुरूप प्रदर्शित कर लंकाकी अशोक वाटिका में फलों का रसास्वादन करते दर्शाया गया है। वृक्ष के नीचे राम के विरह में लीन सीता राक्षसियों के मध्य बैठी दृष्टिगोचर होती है। इसके साथ का दृश्य लंकादहन का है। अन्य स्थान पर एक ऊंचे स्तम्भ पर आसीन हनुमान, दशभुजाधारी रावण से संवाद करते दिखाई देते हैं। छत के अन्तिम दृश्य में वाद्ययन्त्रों और कोलाहल की सहायता से कुम्भकरण को जगाया जा रहा दिखाया गया है।

छत के उत्तरी छोर पर महाभारत के अन्तिमपर्व पर आधारित नयनाभिराम दृश्यावली का चित्रण हुआ है। एक दृश्य में पांचाल नरेश द्रुपद अपनी पटरानी के साथ सिंहासन पर विराजमान हैं और द्रोपदी स्वयंवर में अपना वर चुनने हेतु मनोहारी भावभंगिमा लिए अंजलिमुद्रा में खड़ी है। इसके एक ओर अपने आयुधों से सुसज्जित पांच भाई पांडव दिखाए गए हैं। एक अन्य दृश्य में धनुर्धर अर्जुन मत्स्य नेत्र छेदन करते दिखाई पड़ते हैं। इसी क्रम में कुछ अन्य काष्ठ फलक भी हैं जिनमें सम्भवत: श्री कृष्ण व गरुड़ासन भगवान विष्णु हैं।

मन्दिर के पूर्वी छोर पर विष्णु का त्रिविक्रम अवतार उल्लेखनीय है जिसमें वह उठाई

हुई अपनी जंघा के माध्यम से ब्रह्माण्ड के तीनों लोकों को माप रहे हैं। विष्णु का दायां पांव नागराज के सिर पर है जो पाताललोक का प्रतीक है, बायां पांव ऊपरी फलक पर स्थित ब्रह्मा को छूता दर्शाया गया है। यह देवलोक का प्रतीक है। इस बृहद् त्रिविक्रम के एकदम नीचे उनका लघु वामनावतार है जिसमें वह हाथ में छतरी थामे भिक्षाटन के लिए असुर नरेश राजा बलि के समक्ष दयनीय अवस्था में दिखाई पड़ते हैं। राजा बलि को एक सिंहासन पर बैठे दिखाया गया है जो दान की पुष्टि के लिए हस्तोदक संस्कार को पूर्ण कर रहे हैं, इसकी पुष्टि जलपात्र से होती है जो अब खण्डित हो चुका हैं यहां यह ध्यातव्य है कि विष्णु के इस त्रिविक्रम अवतार को वैकुंठ मूर्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अन्य उल्लेखनीय दृश्यों में विभिन्न देवता और असुर समुद्र मंथन करते हुए देखे जा सकते हैं।

छत पर उकेरी पूर्व कालीन कला भी देखते ही बनती है। इसमें हलासन और वृश्चिक कर्ण मुद्रा में गंधर्व—युगल अंतरिक्ष में विचरण करते दिखाए गए हैं। शास्त्रों के अनुसार मानवों के लिए भूलोक का निर्माण किया गया तो देवताओं के लिए स्वर्ग लोक का। गंधर्व, किन्नर, यक्ष तथा विद्याधर आदि देवों की श्रेणी में रखे गये जिनका निवास स्थान भू और स्वर्ग के मध्य अंतरिक्ष में निश्चित किया गया। प्रस्तुत काष्ठ फलक में किरातवीणा, वैदुर्य दण्डवीणा, विभिन्न प्रकार के रत्नाभूषण, मुकुट, चंवर आदि लिए गंधर्व, खड़ताल बजाती अप्सराओं के साथ विचरण करते दिखाए गए हैं। साथ ही जुड़े निचले फलक में नर्तकों व वादकों की लघु आकृतियां हैं जो शंख, सारंगी, बांसुरी, पखावज, डमरू व मृदंग लिए हुए नृत्यरत हैं। डॉ० हरमन गोट्ज नृत्य की इन भाव भंगिमाओं का सम्बन्ध भरतनाट्यम् से जोड़ते हैं। उत्तर काल की काष्ठकला का विवरण शिव के काष्ठफलक के बिना अधूरा रहेगा। इस काष्ठफलक में सोलह भुजाधारी शिव को उमासंग नटराज रूप में दर्शाया गया है। हिमाचल प्रदेश में नटराज प्रतिमाओं की संख्या नगण्य हैं जिस कारण इस प्रतिमा की महत्ता और भी बढ़ जाती है। विभिन्न आयुधों से सुसज्जित उमा दश हाथ धारण किए हुए है। शिव और उमा के दोनों ओर कार्तिकेय, वीरभद्र आदि की आकृतियां दृष्टिगोचर होती हैं। निचले एक फलक में तेरह गण उकेरे गए हैं जो नृत्य के इस शुभ अवसर पर मृदंग व पखावज धारण किए नृत्य—गायन में लीन हैं।

भगवान् बुद्ध की मार नामक दानव पर विजय का अंकन भी कम उल्लेखनीय नहीं है। भूमि स्पर्श मुद्रा में भगवान् बुद्ध एक ऊंची पीठिका पर ध्यानमग्न विराजमान हैं। उनके दाएं—बाएं मार की दो पुत्रियां नृत्य के माध्यम से उन्हें आकर्षित करने का प्रयास कर रही हैं। इसके अतिरिक्त अस्त्र—शस्त्रों से सुसज्जित दानव मार के अनुचर कोलाहल करके बुद्ध का ध्यान भंग करने में प्रयत्नशील हैं।

गर्भगृह में एक पीठिका के ऊपर दो फुट ऊंची महिषासुर मर्दिनी के रूप में भगवती

लाहौल–स्पिति के उदयपुर नामक स्थान पर स्थित माँ मृकुला देवी का प्राचीन मंदिर

मृकुला की कांस्य प्रतिमा विद्यमान है। प्रतिमा में देवी को प्रत्यालीढ़ मुद्रा में महिष दानव का वध करते हुए दिखाया गया है। प्रतिमा अष्टभुजीय है और देवताओं द्वारा युद्ध हेतु प्रदान किए गए आयुधों—त्रिशूल, वज्र, पाश, शंख, चक्र व गदा धारण किए हुए हैं। देवी ने एक हाथ से महिष के मृत शरीर में से निकले हुए दानव को वध के लिए सिर से पकड़ा हुआ है और दूसरा हाथ वरद मुद्रा में है। महिष के शरीर पर एक के बजाए तीन शेर आकृतियां आक्रमण करती दर्शाई गई हैं। इस कारण प्रसिद्ध कला—विज्ञ शान्तिलाल नागर ने इसे अनूठी माना है। उनका मानना है कि.....प्रस्तुत प्रतिमा में हिन्दूधर्म को प्रदर्शित करती महिषासुर मर्दिनी व बुद्ध धर्म में पूजनीय वज्रवाराही का यह ऐसा अनोखा संगम है जो भारतवर्ष में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता (महिषासुर मर्दिनी इन इण्डियन आर्ट)।

प्रतिमा की पीठिका पर शारदा लिपि में उत्कीर्णित आलेख के अनुसार इस प्रतिमा को १६वीं शताब्दी के मध्य में ठाकुर हिमपाल ने पंजमानक जिणक नाम के शिल्पी से निर्मित करवाया। लेख के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उपरोक्म शिल्पी भद्रवाह का निवासी था। डॉ० वोगल लिखते हैं— ऐसा प्रतीत होता है कि ठाकुर हिमपाल त्रिलोकनाथ के ठाकुर वंश में से था। पीठिका पर संस्कृत में अंकित लेख निम्न प्रकार से है—

ओं ठाकुर—महयी—हीमपालन। यो महादेवी—
मर्कुल उदी पित्रु: पुत्र—पौत्रेण सर्वकाल
तिष्ठिति देव—श्रीयी भवति।
तं म शुभ क्वत्र श्री कश्मीर यदवन्त।
मारनिरह्ल मर्कुलदेवी उपनि
ओं स्वस्ति:।। अस्य
देवतोरोरि मूल्य घटापने दी सहस ४६४५
सोमादिराष्य भद्रावकाषापुरी:
पत्रजमाणक जीणकेन घटिता।

इस मन्दिर में पूर्व स्थापित प्राचीन मूर्ति के विषय में जिज्ञासा के फलस्वरूप कुछ रोचक जानकारी उपलब्ध हुई, जिसका उल्लेख करना यहां परमावश्यक है। कलाविद् व पूर्व राज्य संग्रहालयाध्यक्ष डॉ० ओमचंद हाण्डा को अपने सर्वेक्षण के दौरान उपरोक्त मन्दिर में उपेक्षित पड़ी हुई महिषासुर मर्दिनी की एक प्राचीन काष्ठ—प्रतिमा प्राप्त हुई थी जो अब राज्य संग्रहालय शिमला में संगृहीत है। निर्माण—कौशल व शैली के आधार पर इस प्रतिमा को ८वीं शताब्दी का माना जा सकता है। प्रतिमा चतुर्भुजी है और भरमौर (चम्बा) की लक्षणा देवी की हूबहू अनुकृति प्रतीत होती है। डॉ० हाण्डा का मत है कि प्राचीन मृकुला देवी मन्दिर के गर्भगृह में मूलरूप से यही प्रतिमा प्रतिष्ठित थी। परन्तु राज्य

संग्रहालय के अध्यक्ष रहे सुपरिचित कला–विशेषज्ञ और विद्वान सुरेन्द्रमोहन सेठी डॉ० हाण्डा के इस मत से सहमत नहीं हैं। वह इस प्रतिमा को दोषरहित नहीं मानते। उनका कहना है कि वर्तमान हिमाचल प्रदेश में विद्यमान महिषासुर मर्दिनी की चतुर्भुजी प्रतिमाओं में देवी का वाहन लुप्त रहता है जबकि इस प्रतिमा में शेर दिखाया गया है। इसके अलावा शिल्पकार (मूर्तिकार) ने इसे पार्श्वभाग में दर्शाने के बजाए देवी के अग्रभाग में दिखाया है जो कि शास्त्रानुकूल नहीं है, इसी कारण इस प्रतिमा को मूल प्रतिमा मानना उचित नहीं है। उन का यह भी तर्क है कि शास्त्रीयविधान के अनुसार गर्भगृह की ऊंचाई के अनुपात से ही मूल मूर्ति का निर्माण किया जाता है। इस दृष्टि से प्रतिमा का लघुरूप में होना मूल देवी प्रतिमा के तौर पर प्रतिष्ठित होने के उपयुक्त नहीं है। वह कहते हैं कि चूंकि प्रतिमा फलक के रूप में है और चारों ओर से घड़ी भी नहीं है अत: इसे दीवार के सहारे टिकाकर मन्दिर के किसी गवाक्ष में रखे जाने की सम्भावना अधिक है।

मूल प्रतिमा की वास्तु–स्थापत्य के विषय में जो भी मतभेद हो परन्तु मन्दिर में हुए उत्कीर्णन कार्य को विद्वान और सामान्य जन दोनों अपने–अपने प्रकार से उत्कृष्ट मानते हैं। मृकुला देवी का मन्दिर हिमालयी क्षेत्रों के उन गिने चुने मन्दिरों में से एक है जो विश्व में क्षेत्र की कला–श्रेष्ठता की पहचान कराते हैं। इसी कारण यह मन्दिर विश्व कला धरोहर की श्रेणी में सम्मिलित होने के सर्वथा योग्य है।

संदर्भ : *(१) एण्टीक्विटीज़ ऑफ हिमाचल* – एम. पोस्टल एण्ड मानकोडी।

(२) चम्बा स्टेट गजेटीअर – जॉन फिलिप वोगल।

(३) अर्ली वुडन टेम्पलज़ ऑफ चम्बा – हर्मन ग्वीत्ज़।

(४) टैम्पल आर्किटैक्चर ऑफ वैस्ट्रन हिमालय – डॉ० ओ०सी० हाण्डा।

चांदनी कॉटेज, ढींगरा एस्टेट,
शिमला – १७१००५ (हि०प्र०)

जिला ग्रामीण विकास अभिकरण शिमला (जलागम परियोजना)

जलागम भूमि का वह क्षेत्र होता है जिसका पानी बह कर एक निश्चित स्थान पर एकत्र होकर प्रवाहित होता है। मुख्यत: जलागम परियोजना जल जंगल एवं जमीन के संरक्षण के महत्व, मानव तथा पशु धन पर भीषण जलवायु जैसी स्थितियों के प्रतिकूल प्रभाव को कम करता है। जलागम परियोजना के अन्तर्गत ग्रामीण समुदाय के लिए आय के सतत् स्रोत सृजन करने हेतु सिंचाई, वृक्षारोपण, भूमि संरक्षण, जल संरक्षण, बागवानी तथा पुष्पकृषि आदि गतिविधियां कार्यान्वित की जा रही हैं।

जलागम परियोजना का मुख्य उद्देश्य वर्षा जल की एक–एक बूंद का संग्रह करना व ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार सृजन, गरीबी उन्मूलन, सामुदायिक सम्पन्नता तथा आर्थिक संसाधनों का विकास ऐसे साधारण सरल और सस्ते तकनीकी उपायों तथा संस्थागत व्यवस्थाओं जिन्हें स्थानीय तौर पर उपलब्ध तकनीकी ज्ञान और सामग्री के आधार पर उपयोग में लाया जा सके इस परियोजना के अन्तर्गत किया जाता है।

जलागम परियोजना का कार्यान्वन जिला शिमला के सभी 9 विकास खण्डों में किया जा रहा है। वर्तमान में दो परियोजनायें एकीकृत बंजर विकास भूमि कार्यक्रम पद्धति के दिशा–निर्देशानुसार कार्यान्वित की जा रही है। इन परियोजनाओं का कार्यान्वयन 98 सूक्ष्म परियोजनाओं एवं 85 ग्राम पंचायतों में किया जा रहा है। विवरण इस प्रकार है :–

क्र.सं.	परियोजना का नाम	विकास खण्ड का नाम	क्षेत्र(हैक्टेयर में)	परियोजना की लागत	स्वीकृत राशि	खर्च की जा चुकी राशि
1.	आई.डब्लयू.डी.पी.-1	मशोबरा, बसन्तपुर, ठियोग	7386	295.44 ला.	295.44	265.90
2.	-यथो- -2	धामपुर व चौपाल	12420	745.20 ला.	560.90	528.90
3.	-यथो- -3	रोहड़ू व जुब्बल	6000	360.00 ला.	162.00	110.15
4.	-यथो- -4	छौहरा	7000	420.00 ला.	189.00	120.28
5.	-यथो- -5	रामपुर	6000	360.00 ला.	162.00	61.36
6.	-यथो- -6	जुब्बल	6000	360.00 ला.	162.00	37.17
7.	-यथो- -7	रामपुर	6000	360.00 ला.	162.00	45.29
8.	-यथो- -8	नारकण्डा	5000	300.00 ला.	45.00	18.97
9.	-यथो- -9	डोडरा-क्वार	4500	270.00 ला.	40.50	19.67
		योग :-	60306	3470.64ला.	1778.87	1207.69

उपायुक्त एवं कार्यकारी अधिकारी, जिला ग्रामीण विकास अभिकरण, जिला शिमला (हि०प्र०)

एस जे वी एन

राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को उर्जावान बनाने के प्रति वचनबद्ध

भारत सरकार ने सतलुज जल विद्युत निगम को मिनी रत्न के प्रतिष्ठित दर्जे से नवाजा है। इसके अंतर्गत सतलुज जल विद्युत निगम को और अधिक स्वायत्तता प्राप्त होगी, जिससे 11वीं एवं 12वीं पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान 4500 मेगावाट जल विद्युत का लक्ष्य हासिल करके भविष्य में और भी बड़ी मंजिलें पार करने और राष्ट्र की समृद्धि को नई ऊँचाईयों तक ले जाने में मदद मिलेगी।

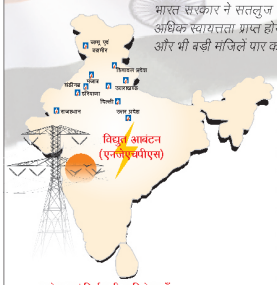

एसजेवीएन को विद्युत क्षेत्र में अग्रिम पंक्ति में पहुँचाना और भारत को भविष्य में प्रचुर विद्युत उपलब्धता वाला राष्ट्र बनाने की हमारी दूरदृष्टि है, जो हमारा प्रेरणा-स्रोत है और इसी परिप्रेक्ष्य में एसजेवीएनएल ने लगभग बीस वर्ष पहले विद्युत क्षेत्र में प्रवेश किया था।

हम अपने अति सफल और देश के सबसे बड़े 1500 मेगावाट क्षमता के नाथपा झाकड़ी जल विद्युत पावर स्टेशन के जरिए सन 2003 से भारत की प्रगति को ऊर्जावान बनाए हुए हैं। कंपनी की 412 मेगावाट क्षमता की रामपुर जल विद्युत परियोजना हिमाचल प्रदेश में तेजी से पूर्णता की ओर अग्रसर है।

अन्य अन्वेषण एवं निर्माणाधीन परियोजनाओं से विद्युत उत्पादन क्षमता में अतिरिक्त 2962 मेगावाट की वृद्धि होगी।

एसजेवीएन विश्व पटल पर

नेपाल में 402 मेगावाट क्षमता की अरुण-III विद्युत परियोजना हासिल की।

भारत में बाहर बड़ी अभियांत्रिकी-खरीद-निर्माण आधार पर कोई जल विद्युत परियोजना हासिल करने वाला इसजेवीएन विद्युत क्षेत्र से सार्वजनिक उद्यमों में पहला संगठन है।

भारत सरकार ने डी.पी.आर के लिए अन्य प्रोजेक्ट प्रदान किये

488 मेगावाट खोलांगचू विद्युत परियोजना भूटान में

900 मेगावाट बोंगचू विद्युत परियोजना भूटान में

अन्वेषण एवं निर्माणाधीन परियोजनाएँ:

- हि.प्र. में लुहरी जलविद्युत परियोजना (775 मेगावाट)
- हि.प्र. में खाब जलविद्युत परियोजना (1020 मेगावाट)
- उत्तराखण्ड में देवसारी जलविद्युत परियोजना (252 मेगावाट)
- उत्तराखण्ड में जासोल सांकरी जलविद्युत परियोजना (45 मेगावाट)
- उत्तराखण्ड में नैटवार मोरी जलविद्युत परियोजना (56 मेगावाट)
- हि.प्र. में धौलासिद्ध जलविद्युत परियोजना (56 मेगावाट)
- नेपाल में अरुण III जलविद्युत परियोजना (402 मेगावाट)
- भूटान में खोलांगचू जलविद्युत परियोजना (488 मेगावाट)
- भूटान में बांगचू जलविद्युत परियोजना (900 मेगावाट)

2007-08	2006-07	2005-06
6449 मि.यू.	6014 मि.यू.	4104 मि.यू.

जुलाई 2008 के दौरान एकल माह में अब तक का सर्वाधिक 1090 मि.यू. बिजली उत्पादन

- एसजेवीएन ने अनवरत तकनीकी उन्नयन को हमेशा प्राथमिकता दी है।
- एसजेवीएन नवीनतम तकनीक के प्रयोग के जरिए विश्वसनीय एवं पर्यावरण मित्रवत् विद्युत के उत्पादन के प्रति कृतसंकल्प है।
- एसजेवीएन एक सूचना प्रौद्योगिकी निपुण संगठन के रूप में स्वस्थ कारोबारी, वित्तीय एवं विनियामक नीतियों का पालन कर रहा है।
- **एसजेवीएन कम कार्बन उत्सर्जन की राह पर**

  विश्व स्तरीय कार्यप्रणालियां अपनाकर कुशलतापूर्वक एवं समय पर निर्मित की जा रही 412 मेगावाट क्षमता की रामपुर जल विद्युत परियोजना से जल विद्युत क्षेत्र की एक विश्वसनीय एवं किफायती विद्युत उत्पादक के रूप में साख बढ़ेगी और देश के ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में बढ़ोत्तरी करने वाले कोयला एवं तेल आधारित ताप विद्युत संयंत्रों के मुकाबले यह एक माकूल विकल्प साबित होगा।

जनता के प्रति संवेदनशीलता

एसजेवीएन द्वारा अंगीकृत विस्तृत पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन नीति में सतत्शील विकास के प्रति कृत संकल्पता और जीवन की गुणवत्ता के उन्नयन के उद्देश्य समाविष्ट हैं। निगम की न. झा. ज. वि. स्टे. की इस विषय में किए कार्य कलापों की विश्व बैंक ने निम्नवत् सराहना की है :

"इस परियोजना में किए गए पुनर्वास संबंधी कार्यों की सफलता के उदाहरण भारत में बहुत ही कम मिलते हैं तथा भारत में बैंक द्वारा सहायता प्राप्त परियोजनाओं में पुनर्वास कार्यान्वयन के सर्वोत्तम उदाहरणों में से एक माने जा सकते हैं। यह अन्य परियोजनाओं के लिए एक आदर्श माना जाना चाहिए।"

शानदार प्रदर्शन

रूपये करोड़ में

विवरण	2007-08*	2006-07	2005-06	2004-05
कुल आय	1582.00	1665.76	1391.79	1121.00
कर पश्चात लाभ	764.51	732.71	498.22	298.43
लाभांश	244.00	235.00	159.43	143.16
रिजर्व व सरप्लस	1297.50	818.54	358.79	43.41

* अस्थायी

गुणवत्ता के प्रति संवेदनशीलता

- गुणवत्ता प्रबंधन प्रणालियों के लिए आईएसओ 9001: 2000
- आरएचईपी की निर्माण संबंधी गुणवत्ता के लिए आईएसओ 9001: 2000
- एनजेएचपीएस के पर्यावरणीय प्रबंधन के लिए आईएसओ 14001: 2004

पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता

- गोल्डन पीकॉक इको-इनोवेशन अवार्ड 2007
- ग्रीनटेक सिल्वर अवार्ड 2006 एवं 2007
- ग्रीनटेक ब्रॉन्ज अवार्ड 2006 एवं 2007
- ग्रीनटेक सिल्वर अवार्ड 2005
- गोल्डन पीकॉक अवार्ड 2004

सतलुज जल विद्युत निगम लिमिटेड

(भारत सरकार एवं हिमाचल प्रदेश सरकार का संयुक्त उपक्रम)

कारपोरेट मुख्यालयः हिमफेड भवन, न्यू शिमला, शिमला-171009, हिमाचल प्रदेश (भारत)

एक्सपीडाइटिंग कार्यालयः इरकॉन भवन, सी-4, डिस्ट्रिक्ट सेंटर, साकेत, नई दिल्ली-110017

www.sjvn.nic.in

स्वहित एवं राष्ट्र हित में ऊर्जा की बचत करें

RAMADS